गुलाब और कांटे

आचार्य मुनि सुशील कुमार

गुलाब और कांटे

संस्थापक

अध्यक्ष

आचार्य मुनि सुशील कुमार

अर्हम् प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रकाशक : अर्हम् प्रकाशन

प्राप्ति स्थान :

1. अहिंसा भवन शंकर रोड़,
   न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली-60

2. अहिंसा विहार, आचार्य सुशील मुनि आश्रम,
   सी-599, चेतना मार्ग, डिफेंस.कालोनी,
   नई दिल्ली-110024

प्राप्ति स्थान :

1. भारतीय विद्या प्रकाशन
   1, यू० बी०, जवाहरनगर,
   बैंग्लो रोड, दिल्ली-7

2. पोस्ट बाक्स नं 1108, कचौड़ी गली,
   वाराणसी-1

द्वितीय संस्करण : दिनांक : 15-6-1987

प्रतियां : 1100

मूल्य : 15-00 रुपये

मुद्रक : जैन अमर प्रिंटिंग प्रेस

प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन को यदि आप गुलाब कहें और कांटा कहें या दोनों का मिश्रण कहें तो जीवन की परिभाषा अपने आप बन जाएगी। इसमें गुलाब के फूलों जैसी कोमलता है और कांटों जैसी कर्कशता। लेकिन कांटों के बिना गुलाब की रक्षा नहीं हो सकती और गुलाब के बिना सौन्दर्य का बोध नहीं हो सकता। हर आदमी गुलाब की ओर आकर्षित होता है लेकिन कांटे गुलाब तक पहुंचने में बाधक बनते हैं। पहले विष का पान करना होगा। जब तक विष पीने की हिम्मत नहीं गुलाब तक तुम पहुंच नहीं सकते। प्रत्येक जिन्दगी गुलाब और कांटों का मिश्रण है जो व्यक्ति गुलाब के साथ ही कांटों को पार कर जाता है फिर वो मनुष्य इन्सान ही नहीं भगवान बन जाता है। इस सारी पुस्तक में कभी कोमल कमनीय कल्पनायें उदित हुईं। और कभी जिन्दगी में कड़वाहट आई, जब जिन्दगी ने अवसाद दुःख और विषाद की कहानियां देखी तो जिन्दगी रो पड़ी, लेकिन गुलाब ने जिन्दगी को थामे रखा और कांटे ने जिन्दगी के मोह को सदा चोट मारी इसलिए इस गुलाब और कांटे के बीच में आप जिन्दगी को परखेगे तो कानपुर की, इलाहाबाद की याद आएगी। आपको एक अलग कहानी मिलेगी, त्रिवेणी संगम की, और वो दिल्ली जिसने उत्थान पतन के खेल दिखाये हैं, और कब-कब किसको संवारा है, किसको बिगाड़ा है, और किसको तख्त पर बिठाया है, किसको जमीन पर लुंठित कर दिया। इस समूचे इतिहास से आप अवगत हो सकेंगे। जिसमें गुलाब और कांटे एन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान दोनों का ही बोध है।

जिन्दगी उसी का नाम है जिसमें कांटे भी है और फूल भी है कांटे और फूल दोनों के मिलने से जिन्दगी बनती है। इसलिए इसमें मेंने जो कुछ अनुभव किया व्यक्तिगत जीवन में, सामाजिक जीवन को देखते-देखते जब कभी कुछ अच्छा या कड़वा लगा उन सबको कलम के द्वारा कागज पर उतार दिया है, आपको पसंद आये तो सम्भाल लेना, नहीं समझ आये तो वापिस दे देना लेकिन जिन्दगी गुलाब और कांटे के सिवाय कुछ नहीं है।

आचार्य, **मुनि सुशील कुमार**

'दो शब्द'

पन्द्रह जून को भारतीय क्षितिज पर एक ओर चमकीले परम दीप्तियुक्त अंशु मयंक की भान्ति शान्त, बुद्ध की तरह आत्म प्रकाशित आत्मा ने पुनः शरीर ग्रहण किया। यह कोई अधिक पुरानी घटना नहीं, बस वर्षों के बासठ सफहे पलटने होंगे। वैसे भी देश और मानव जाति के इतिहास में यह समय नगण्य समझा जाता है। 1926 में एकीकृत हरियाणा के गुड़गांव जिले में शिकोहपुर नामक ग्राम में (जिसका कि वर्तमान नाम सुशीलगढ़ है) जन्म हुआ। जिसका नाम भारत छोड़ो आन्दोलन के 1942 में जैन धर्म दीक्षा के साथ सुशील कुमार रखा। वही जैन साधु अपने लगभग साढ़े चार दशक के सन्यास जीवन में धर्म-दर्शन और तीनों में समसामयिकता खोजता रहा।

वर्ष बीतते चले गए और प्रत्येक नए वर्ष के साथ उनके चिन्तन की गहराइयां और वर्तमान संदर्भों में धर्म के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वरूप की दूरगामी निगाहें अनन्त में अनुत्तरित प्रश्नों का समाधान निकालने में लगी रही। यह दैविक संयोग ही रहा कि युवावस्था में वृद्ध की परिपक्व बुद्धि और हालत के विश्लेषण की समझ इनमें चरम पर पहुंची। अध्यात्म को विचारों के शुद्धिकरण का सूत्र कहते हुए जैन धर्म की परम्परा को नई दिशा देने का विचार और इच्छाशक्ति उनमें प्रस्फुटित हुई।

महाराज छोटे लाल द्वारा दीक्षित आचार्य सुशील मुनि जी महाराज ने देश में धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक पुनर्जागरण के लिए विश्व धर्म सम्मेलनों की झड़ी लगा दी। छः विश्व धर्म सम्मेलन भगवान् महावीर की पावन भूमि पर हो चुके हैं। उनके विचारों को सम्पूर्ण मानव जाति तक पहुंचाने के उद्देश्य से छ शाकाहार संगोष्ठी चार अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन और 100 के लगभग सर्वधर्म सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है। अहिंसा के सन्देश को लेकर गौ रक्षा आन्दोलन, भूदान, ग्रामदान और समसामयिक विषयों पर अभियान चलाने के वे सिद्दत से अगुआ रहे हैं। जैन धर्म (जो कि मानव धर्म है) उसकी महान पताका उठाये अर्हत संघ आचार्य ने विदेशों के क्रम का श्री गणेश किया। यह क्रम उन रूढ़िवादी, कट्टरपंथी व्यवस्थाओं पर करारा प्रहार था, जो जैन धर्म को सदियों से सीमित दायरे में बांध कर बैठे थे। आचार्य जी का उत्तर बहुत ही विनम्र और सौम्य था कि भगवान बुद्ध के महान् बौद्ध धर्म की पताका को लेकर सम्राट अशोक के आत्मज गए। हम भी भगवान महावीर के सन्देश को लेकर उन सभी स्थानों पर जाएंगे जहां मानव पुत्र जीव रहता है, और वे गए। परम्पराएं, मान्यताएं कल्पनाएं टूटी। नई दृष्टि से प्रकाशमय पथ दिखाया। छयालीस वर्षों के आध्यात्मिक जीवन ने उनमें तेजस्वी ऊर्जापूंज प्रवाहित किया। उन्होंने धर्म और विज्ञान पर अधिकाधिक शोध कार्य कर उनके सम्बन्धों को स्थापित किया। मंत्र और योग का वैज्ञानिक प्रभाव शरीर और चिन्तन पर किस प्रकार होता है, उसके असर की सप्रमाणिक व्याख्याएं की। शब्द-विज्ञान, आभा-विज्ञान, रंग-विज्ञान, अर्हत, योग आदि गूढ़-

विषयों के वे मूर्धन्य विद्वान हैं। णमोकार विज्ञान की संरचना कर आचार्य श्री ने णमोकार मंत्र को नव वैज्ञानिक विचारधारा से शिक्षित युबाजनों के लिए अधिक तर्क संगत और ग्राह्य बनाया है। ज्ञान केन्द्र के विशाल सरोवर के स्वरूप आपके समक्ष आने से ही जीवन में व्याप्त अंधकार स्वयं लुप्त हो जाता है। प्यार, शान्ति और करुणा का उफनता हुआ उदधि नव आशाओं, आकांक्षाओं की कौमुदी प्रसरित करने लगता है। आपका आशीर्वाद शरीर मन और विचार पर लगे गहरे घावों को आश्चर्यजनक ढंग से भर देता है।

अहिंसा की मशाल लिए ये देवदूत बेखौफ, हिंसक और उन्मादी रक्त पिपासुओं के बीच आगे बढ़ जाता है। पंजाब में मानवीय करुण पुकारों से आचार्य श्री उद्वेलित हुए। पंजाब शान्ति अभियान में प्राणपण से लगे हैं। खून से लथपथ आतंकवादियों ने हाथ जोड़े यही कहा : ये हाथ आपकी रक्षा के लिए हैं जान लेने के लिए नहीं।

गुरुदेव का कहना है कि—शरीर की हिंसा से कहीं खतरनाक, भयावह, नैतिक मानसिक मूल्यों की हिंसा है। वे धर्म से कहीं बढ़कर भगवान के मानवपुत्र जीवों की सेवा को समझते हैं।

मैं तो केवल इतना ही कह सकती हूं कि गुरुदेव एक युग हैं। आचार्य सुशील मुनि जी महाराज जैन धर्म, दर्शन और इतिहास की सन्त परम्परा के एक सुनहरे अध्याय हैं ऐसा न कहकर यदि यह कह दिया जाए कि वह विश्व संस्कृति के अमूल्य रत्न हैं तो कोइ अतिशयोक्ति न होगी आचार्य श्री केवल राजयोगी ही नहीं कर्मयोगी भी हैं। ऐसी पवित्र आत्मा जिसका प्रत्येक शब्द स्वयं मन्त्र है, सिद्दी है। सूत्र है। समग्र विश्व के प्राणी उनके अपने हैं। सूत्र और सिद्दी से परिपूर्ण महावीर के इस पुत्र को मुस्लिम अपने रहनुमा की तरह, ईसाई अपने धर्म गुरु की तरह, सिख एक सच्चे ग्रन्थी की भांति, एक बौद्ध फकीर और सनातनी धर्मोचार्य से कहीं ऊपर विश्वास करता है, ये देश के अकेले सन्त हैं जिनमें सभी धर्मों के अनुयायी और धर्म प्रचारक व गुरु विश्वास रखते हैं। वे सभी के अपने हैं। रूढ़ि-परम्परा और संकीर्णता की सभी दीवारें बौनी हो चुकी हैं। ऐसे युग पुरुष ! विकास की नूतन परम्परा के लब्ध प्रतिष्ठ अर्हत् संघ आचार्य, श्रद्धा केन्द्र गुरुदेव हर पल, हर क्षण मेरे हृदय में है। गुरुदेव की वाणी, उनका वरद हस्त उनका सानिध्य ही मेरे जीवन का सम्बल है, शक्ति है, मेरे जीवन की पूजा उपासना व अर्चना है। मेरे जीवन का कण-कण श्वांस-श्वांस आपके और आपके कार्यों के लिए सर्मपित है।

भगवन महावीर, गौतम बुद्ध की परम्परा के दिव्य अर्हतार्च अहिंसा के मसीहा को मेरा कोटि-कोटि नमन।

अर्हत् संघ आचार्याणां दिव्य योगी मुनिश्वर

विश्व धर्म प्रस्तीर्णाय मुनि सुशील गुरुवे नमः

साध्वी साधना

दानवीर

श्री ओमप्रकाश जैन

परिचय

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री ओमप्रकाश जैन, पानीपत वाले ने अपूर्व सहयोग प्रदान किया है। श्री ओमप्रकाश जैन एक प्रसिद्ध समाज सेवी, धर्मपरायण और राजनैतिक नेता हैं।

श्री ओमप्रकाश जैन का जन्म पानीपत के समीप जाटौल गांव में एक धनी परिवार में लगभग सन् 1950 में हुआ था। आपके पिता श्रीमान लाला चुन्नी लाल जी बहुत धर्म परायण एवं समाज सेवी हैं, जिनका प्रभाव केवल श्री ओमप्रकाश जैन पर ही नहीं अपितु उनके बड़े भाई श्री रामभज जैन पर भी पड़ा है। दोनों भाई सदा शुभ चिन्तन में और धर्म कार्य में अपना सहयोग देते रहते हैं। दान आदि के कार्य में कभी पीछे नहीं रहते। इसका प्रमाण है—इनके कारखाने के बाहर चल रहा एक निःशुल्क हस्पताल।

श्री ओमप्रकाश जी पानीपत जैन समाज के एक स्तम्भ हैं जो पिछले कई वर्षों से पानीपत जैन समाज की सेवा में रत हैं। साधु समाज की सेवा, चातुर्मास के समय साधु संघ के ठहरने आदि का प्रबन्ध आप बड़े मनोयोग और सुचारु रूप से करते रहते हैं। इसी कारण जैन समाज में आप अग्रणीय हैं।

उद्योग, व्यापार व कृषि के क्षेत्र में भी आप अग्रणीय हैं और आज के इस दूषित वातावरण में भी आप न्याय नीति के साथ अपना उद्योग और व्यापार चलाते हैं। इसी कारण 1985 में आपको पानीपत मार्किट कमेटी का चेयरमैन चुना गया है। हरियाणा के व्यापार व उद्योग मण्डल ने आपको कई एसोसिएशन का अध्यक्ष चुना है जैसे—

President of the Solvex Units Association Haryana, President of the Hayana Rice Millers & Dealers Association etc.

आप निम्न व्यापरिक व औद्योगिक संस्थाओं में साझेदार व मैनेजिंग डायरेक्टर हैं :—

(i) Shri Vardhman Rice & General Mills, Gohana Road, Panipat. (Producer of Hara Killa Brand Basmati Rice)

(ii) Shri Vardhman Ice & General Mills, Gohana Road, Panipat.

(iii) Shri Vardhman Solvex Pvt. Ltd., Gohana Koad, Panipat.

(iv) M/s. Chuni Lal Ram Bhaj, Commission Agent, Gaushala Mandi, Panipat.

(v) Shri Vardhman Agricultural Farm, Village Jattal (Panipt).

आपकी ख्याति तमाम भारत में फैल रही है। भगवान महावीर से प्रार्थना है कि आपको व आपके परिवार को समाज व राजनीति के क्षेत्र में अधिक काम करने की शक्ति प्रदान करे।

विषय-सूची

प्रयाग	10
कानपुर	23
आगरा	35
मथुरा-वृन्दावन	41
दिल्ली	57
राष्ट्रपति जी	73
अद्भुत योगी से भेंट	79
आज के परिवेश में योग चमत्कार का घरोंदा बन गया है	83
राजतन्त्र और धर्म	86

गुलाब और काँटे

प्राणी मात्र को
सस्नेह समर्पित

'प्रकाशक'

है गुल के साथ ख़ार भी बे सबब नहीं।
है हुस्न तोलने का कांटा लगा हुआ।।

"'गुलाब और कांटे"

प्रयाग

सँगम-स्थली

भारत आज से नहीं, बहुत प्राचीन काल से धर्म, दर्शन और संस्कृति का सुन्दर संगम स्थल रहा है। यहां अनेक धर्म हैं, अनेक दर्शन हैं और अनेक संस्कृति हैं। अनेकता में एकता की, भेद में अभेद की तथा विरोध में समन्वय की स्थापना करना भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व है। भारत क्या है? इस प्रश्न के समाधान में जो कहा जा सकता है, वह यह है कि भारत विभिन्न विचारों की, नाना परम्पराओं की अनेक आचारों की मिलन भूमि रहा है। जिस भारत में आस्तिक दर्शनों ने जड़ जमाई, वहीं पर नास्तिक दर्शन भी फले-फूले। जहां वैदिक दर्शनों ने मोहक क्रीड़ा

की, वहां वेद विरोधी दर्शनों की भी मधुर केलि दर्शनीय थी। भारत, अनेक होकर भी एक रहा है।

उक्त तथ्य तब अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब प्रयाग पहुंचकर गंगा यमुना और सरस्वती का सुन्दर संगम स्थल देखने में आता है। गंगा की धवलिमा, यमुना की नीलिमा और सरस्वती की शुभ्रता किस सहृदय चेतन के मन को मुग्ध न करेगी ? प्रयागराज के मनोहारी तटपर पहुंचकर मानवी मन का प्रसुप्त कवित्व जाग उठता है। शान्त एवं गम्भीर गंगा की गहनता तथा चञ्चलता एवं वेगवती यमुना की थिरकन एक अद्भुत दृश्य उत्पन्न करती है। सरस्वती की लीनता तो मानो, आज भी जन-जन के मन में ब्रह्म-तत्त्व की भांति अप्रकट ही है।

भारत के नगरों में प्रयाग का अपना एक स्थान है, अपना एक मूल्य है, और है—अपना एक महत्व। आर्यों के वासन्ती यौवन की अभिव्यक्ति यज्ञों के रूप में यहीं पर मुखरित हुई थी। श्रमण परम्परा के ब्रह्मा, नाथ परम्परा के आदिनाथ और जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को कैवल्योपलब्धि प्रयाग राज्य के पावन स्थल पर ही हुई थी। बौद्ध सम्राट् हर्षवर्धन ने कभी यहीं पर सर्वस्व दान किया था।

आर्यों का प्रयाग, एवं जैनों का पुरिमताल नगर, मुसलिम युग में आकर अल्लाहाबाद बना और अंग्रेजी शासन में वह इलाहाबाद में परिवर्तित हुआ। भारत की स्वतन्त्रता के साथ, भारत की प्रसुप्त संस्कृति फिर से सजग तथा सचेत होने लगी है। गंगा, यमुना और सरस्वती के पुनीत तट पर बसा प्रयाग, आज फिर से अपनी चिर विलुप्त समन्वय की भावना की खोज में लगा है। सन्देह नहीं कि प्रयाग आज फिर से शंकर के अद्वैत की, धर्मकीर्ति के तर्क की और सिद्धसेन के अनेकान्त की मिलन भूमि बनने की तैयारी में है। भारत का बौना पुरुष प्रयाग के तट पर विराट बनेगा।

प्रयागराज मात्र धर्म, दर्शन और संस्कृति का ही संगम नहीं, भारत की राजनीति का भी संगम स्थल रहा है, और आज भी है। सप्रू एवं

मोतीलाल की प्रतिभा ने, नेहरू की महानता ने और तपस्वी टंडन की गम्भीरता ने भारत की राजनीति को नया दर्शन और नयी संस्कृति प्रदान की है।

नयी त्रिवेणी

महाप्राण निराला

परन्तु मेरा मन, प्रयाग के उस जीते-जागते संगम की बात सोच रहा है, जो आज भी भारत के धर्म, दर्शन तथा संस्कृति को प्राणान्वित और गौरवान्वित कर रहा है। वह संगम है—हिन्दी के साहित्यकारों का। निराला की गंगा, महादेवी की यमुना और पंत की सरस्वती, जो आज भी भारत के जन-जन की चेतना को ऊर्ध्वमुखी तथा ऊर्जस्वित करने में संलग्न है। भारत के काव्य को निराला ने नयी दृष्टि दी, महादेवी ने नयी भावना दी और पंत ने नयी वाणी दी।

निराला, महादेवी और पंत—इस साहित्यिक त्रिवेणी से मिलने की चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा था। काशी से प्रयाग पहुंचा, तो चिरकाल की प्रसुप्त भावना जागृत हुई। ९ फरवरी को दो बजे दारागंज में निराला से मिलने पहुंचा। दूर गली में एक छोटा-सा मकान, जिसके बाहर लकड़ी का एक तख्ता था, उसपर चौक से लिखा था— 'निराला महल।'

परन्तु चारों ओर से द्वार बन्द थे। यह निरालाजी के आराम का समय था। आशा का दीप बुझने को था, कि सहसा द्वार खुला। मैंने प्रवेश करते ही देखा—रजाई ओढ़कर महाप्राण निराला लेटे हुए थे। मुझे बैठने का संकेत किया, और कुछ क्षणों के बाद स्वयं भी उठकर बैठ गए। मैंने देखा—भले ही निराला शरीर से दुर्बल हो चुके हों पर आज भी मनोबल की कमी उनमें नहीं है। महाकाल तथा महाप्राण कवि के नेत्रों में तेज है, किन्तु उस तेज में विनयशीलता है, और मृदुता भी। निरालाजी ने मुझ से इंगलिश में कहा—

"मैंने पहले आपको कहीं देखा है। क्या आप लाहौर कभी गए हैं?"

मैंने कहा, "जी हां, गया तो हूं।"

तब आगे बोले—"इलाहाबाद इधर नहीं जाता, इधर जाता है।"

इसका अभिप्राय मैं नहीं समझा, और मैं केवल मुस्करा कर रह गया।

फिर कुछ सचेत होकर वे बोले–"जनाब, कहां पर रहते हैं?"

मैंने कहा–"मैं, जैन मुनि हूं। सुशीलकुमार मेरा नाम है। कलकत्ता से लौट रहा हूं और दिल्ली की ओर जा रहा हूं। यहां पर आप से मिलने को आया हूं।" फिर मैंने दर्शन और साधना के विषय में कुछ बताया। मेरे मिलने के एक दिवस पूर्व ही निराला जी ने एक वक्तव्य में कहा था—मेरा कवि अब मर चुका है। मुझसे उन्होंने पूछा—"आप की अवस्था कितनी है?"

"३५ वर्ष", मैंने कहा।

इसपर निराशा-भरे स्वर में कवि बोला- मैं अब बूढ़ा हो चला हूं, और मेरा २० सेर वजन कम हो गया है।

वे अपनी मनोव्यथा को व्यक्त कर रहे थे। जब मैंने यह कहा, कि मैं आपको एक शेर सुनाना चाहता हूं, तब वे बोले—अवश्य ?

"जईफी जिन्दगी में,
वक्त की बेजा रवानी है।
अगर जिन्दादिली है, तो;
बुढ़ापा भी जवानी है॥"

मेरे उक्त शेर को सुन कर जैसे उनका प्रसुप्त कवित्व जाग उठा हो ! वे मेरी ओर देखकर बोले—

"दोस्तों से दुश्मन अच्छे हैं, जो जलकर नाम लेते हैं।
गुलों से खार बेहतर हैं; जो दामन थाम लेते हैं॥

प्रयाग के साधु, सन्त और सन्यासियों के प्रति महाकवि के मन में बहुत गहरा असन्तोष है। वे अपनी रहस्यवादी भाषा में, मन्द स्वर में कहने लगे—"यहाँ पर भी बिरादरी तो बहुत बड़ी है, बाल-बच्चे भी बहुत हो गए हैं, लेकिन हिसाब-किताब ठीक नहीं है। मैंने अनेकों बार उन्हें समझाया है; कि अब जमाना लद गया है। जहमत को छोड़ दो। अब प्रतिष्ठा का आधार वेष नहीं गुण होने चाहिएँ।

फिर एक युवती से बंगला में बात चीत करने लगे। शान्ति-निकेतन और रवीन्द्रनाथ के विषय में कुछ कहा था। फिर इंगलिश में बोलकर कहा—'मैं भी कभी कलकत्ता रह चुका हूं।'

मैं चलने को उठा, तो हँसकर बोले—"मैं आपको देखकर बड़ा खुश हूं। क्या आप कुछ खाना पीना पसन्द करेंगे ?" मैंने अपने मनसे सोचा–निराला वस्तुतः निराला ही है। उसका तन भी निराला, और मन भी निराला। निराला जैसे भारतीय संस्कृति में बिखर कर सर्वत्र निराला हो चुका है। चलते-चलते मैंने महाप्राण निराला के दाएं हाथ की अंगुलियों को अपने दोनों हाथों में लिया, और मैं बोला—"इन्होंने कितना साहित्य दिया है, हमें !"

वे कुछ गम्भीर होकर मन्द स्वर में बोले—"पर, समझा कितनों ने है ?"

मैंने समझा हमारा यह महाकवि अपने युग से उतना ही असन्तुष्ट है, जितना कभी अपने युगमें संस्कृत का महाकवि भवभूति रहा होगा !

मैं निराला महल से निकल ही रहा था, कि एक युवती ने अपनी नोट बुक निरालाजी के सामने आगे बढ़ाते विनीत स्वर में कहा—

"कुछ आशीर्वाद का प्रसाद दीजिए।"

निराला क्रुद्ध होकर रोष भरे स्वर में बोले—"वह रोशनी गई, जिससे चिराग जलता था। हस्ताक्षर यहाँ नहीं, आनन्द भवन में मिलते हैं।"

महाकवि निराला जितने अधिक आशुतोष हैं, उससे भी अधिक भयंकर कभी-कभी वे आशुरोष बन जाते हैं। इसका कारण उनकी पवित्र आत्मा को न कहकर, उनकी मनोव्यथा और उनकी असन्तुष्ठ मन:स्थिति को ही कहना मैं अधिक पसन्द करूँगा। महाप्राण निराला का कवि भले ही आज प्रसुप्त पड़ा हो, पर उसके अन्तर का मानव तो आज अतिमानव की भूमि के बहुत निकट जा लगा है।

नयी त्रिवेणी

कवयित्री

१० फरवरी को लगभग १० बजे मैं प्रयाग महिला विद्यापीठ जा पहुंचा था। गेट में प्रवेश करने से पूर्व ही मुझे ज्ञात हुआ कि महादेवीजी अपने ऑफिस में आ चुकी हैं। विद्यापीठ में आज दीक्षान्त भाषण का उत्सव था। कर्मचारी और स्वयं महादेवीजी भी अपने व्यस्त कार्यक्रम में

बहुत व्यस्त थीं। फिर भी मुझ से मिलने के लिए उन्होंने कुछ अवकाश निकाला ही।

हरी कन्नी की धवल साड़ी में गौरवर्णा महादेवीजी शुभ्रवसना सरस्वती की प्रतीक बनकर अपने ऑफिस में खड़ी हुई थीं। सम्भवतः अपने कर्मचारीगण को वे कुछ आदेश निर्देश कर रही थीं। कुशल-मंगल के परम्परागत शिष्टाचार के बाद वे बोलीं—

"आप किधर से पधारे हैं?"

मैंने कहा—"कलकत्ता से दिल्ली की पदयात्रा पर हूं, और मेरा नाम सुशील मुनि है।"

कुछ स्मरण करती सी महादेवीजी बोलीं—"अच्छा, आप पहले भी प्रयाग में आ चुके हैं। आपने विश्वधर्म सम्मेलन किया था न?"

"आप की कौन-सी साहित्य साधना चल रही है, आजकल?"

मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"अभी-अभी—मेरी "सप्त पर्णा" निकली है। नया अभी कुछ लिखा नहीं है। समय भो मिल नहीं पा रहा है। विद्यापीठ को सँभालने में पर्याप्त समय लग जाता है।"

फिर विद्यापीठ के विषय में बोलीं—"सरकार का सहयोग अभी हमने लिया नहीं है। सरकारी सहयोग की पद्धति विचित्र है। वह थोड़ा देकर सबपर आधिपत्य चाहती है। परन्तु उसमें हमारी संस्कृति का संरक्षण नहीं रह पाता।

महादेवीजी की साहित्य-साधना जितनी ऊँची है, उतनी ही गम्भीर भी। मधुर भावों की अभिव्यञ्जना में, सरस शैली के प्रतिपादन में और विचारों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मे महादेवीजी अपने तुल्य आप ही हैं।

किसी एक धर्म या अपने-अपने रूप में सभी धर्मों के प्रचार का युग लद चुका है। आवश्यकता है कि धर्म के सर्वस्व का अभिव्यंजन आध्यात्मिक धरातल पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उपस्थित किया जाये, जिससे जातीय जीवन के दैवी गुणों का अभ्युदय हो और समष्टि के सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त हो! व्यक्ति विश्व के प्रति उत्तरदायी बने।

प्रयाग में पंतजी के साथ

मुनि श्री सुशीलकुमार जी ने गुलाब और कांटे शीर्षक अपनी लेख-माला की यह दूसरी किस्त पाठकों के लिए प्रस्तुत की है। इस किस्त में प्रयाग-निवास के अवसर पर छायावाद और प्रगतिवाद के कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत के साथ हुई मुलाकात का विवरण है। साहित्य और संस्कृति के दो द्वीपों के रूप में श्री पंत और श्री मुनि जी का यह संगम हमारे मानस को रंगीन कल्पनाओं से भर देता है। लगता है, मानो दोनों द्वीप एक हो जाना चाहते हैं।

प्रयाग के आनन्द को हम भुला नहीं सकते। अभी उसमें सुख और आनन्द के सुरम्य स्रोत और मोहक व्यक्तित्व शेष हैं। हम उस व्यक्ति के सम्बन्ध में बिना कहे कैसे रह सकते हैं, जिसके गीतों की कसक और कविताओं की तड़पन ने हमें छाया तथा प्रगति के रहस्य बताये हैं। "स्तब्ध ज्योत्स्ना में संसार, चकित रहता शिशु सा नादान।" होने पर भी उसे "निमंत्रण देता मुझको मौन" के रहस्यवादी निमंत्रण समझने की जिसमें प्रारंभ से ही नव नव उन्मेष शालिनी प्रतिभा रही है, उसका नाम आप भूले नहीं होंगे! ये ही हैं वे, अर्धनारीश्वर की तरह समूचे जगत् को बच्चे की तरह सहलाते हुए, पर्वत की निर्जन; किन्तु मोहक घाटी में खिले हुए पुष्प की तरह विमुक्त हृदय से पराग बिखेरते-से-श्री सुमित्रानन्दन पन्त!

१० फरवरी का दिन! इस यात्रा की पहली मुलाकात! क्योंकि पंतजी कुछ बीमार थे, इसलिए उनकी इच्छा थी कि मुनिजी से वार्तालाप मेरे घर पर ही हो। और हमारे साथी श्री

विजय मुनिजी, जो कि एक कुशल कहानीकार और सफल निबंध लेखक हैं, की भी यही इच्छा थी कि पंतजी से वार्तालाप अवश्य हो। इसलिए हमने पंतजी के घर जाने का कार्यक्रम तय किया। हमारे पहुँचने से पहले पंतजी दरवाजे पर हमारी राह जोह रहे थे। कितना विनय, और कितनी शिष्टता, उस साहित्यकार में भरी है! लगता है समग्र भारतीय शालीनता पंतजी में उभर आई हो! उन्हें यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि मुनिजी पैदल ही चलते हैं। बोले–"मुनिजी, मुझे क्षमा करें! कितना दुःख पहुँचा है मुझे कि मैं वाहन पर चढ़नेवाला व्यक्ति आप तक न पहुँच सका। खैर, मेरा मन संतुष्ट भी है कि आपने मेरी कुटिया को पवित्र कर दिया।"

प्रश्नकार

हम सब लोग प्रारंभिक वार्तालाप के बाद कुछ विशेष प्रकार की चर्चा में लीन हो गए। क्योंकि हम उस दिन प्रश्नकार बनकर ही गये थे! हम जानना चाहते थे कि इस अमर-भारती के गायक के घट में जीवन और जगत् की समस्याओं के प्रति क्या समाधान छुपे हैं? धर्म और दर्शन के प्रति, ब्रह्म और माया के प्रति महावीर और बुद्ध, राम और कृष्ण, द्रविड़ और आर्य, पूर्व और पश्चिम, मार्क्स और गांधी, इन सभी के युग निश्चय एवं विचारों को जानने के लिए हमने उनसे युग के प्रतिनिधि के रूप में बात की। एक कवि के नाते पंतजी उसमें पूर्णतः सफल हैं। क्योंकि अतीत-दर्शन और भविष्य दर्शन के लिए जिस क्रांतदर्शी युग-दृष्टि की जरूरत है वह पंतजी में चमक आई है। उनके विचारों को हम दो ढंग से समझ सकते हैं। उनकी कविताओं से और उनकी निजी मान्यताओं से! इसीलिये हमने पाया कि उन्होंने कुछ भी लिखने के लिये नहीं लिखा। उनका लेखन, उनके विचार एवं उनके विश्वासों की अभिव्यक्ति है। वे कहने लगे–"मुनिजी, देश में शालीनता और स्फूर्ति दरिद्र हो रही है। जीवन के प्रति एक विचित्र दृष्टिकोण बनता चला जा रहा है।" मैंने बीच में रोकते हुए कहा–"क्या आत्मवादी दृष्टिकोण हमारे समग्र जीवन की आधार-शिला नहीं बन सकता?" बड़े खिन्न से होकर बोले "मुनिजी, आत्मवाद ने हमें अति वैयक्तिक बना दिया है। हमारा सामूहिक एवं समवेत जीवन विश्रृंखलित हो गया है। कहाँ वे आर्य जो 'संगच्छध्वं संवदध्वं, सहवीर्यं करवा वहै। और कहाँ वह साहस, 'चरैवेति, चरैवेति' कहाँ वह सत् संकल्प 'विश्वं कृण्वंतु आर्यम्' ये सब हमारे जीवन के उत्साह की कहानियाँ व्यक्ति-मुक्ति एवं वैयक्तिक निर्माण की भावना ने छीन ली हैं।

व्यक्तिमुक्ति

•

"मैं साधुओं के प्रति बड़ा आदर रखता हूँ। महावीर और बुद्ध हमारे इस देश के नक्षत्र थे। जिनकी रोशनी में हम और हमारा देश चल रहा है। पर इन्हीं के नाम पर व्यक्ति-मुक्ति को बहुत ज्यादा बल दिया गया। यद्यपि वे समस्त भूत-हित में अहिंसा की डोर जोड़ रहे थे। किंतु उनके ठीक प्रतिकूल हम सब लोग चले जा रहे हैं।" विजय मुनि जी ने बीच में कहा-"पंतजी के विचार समन्वय वादी बहुत हैं। सुख दुख को आप जीवन संतुलन की अनिवार्य कड़ी मानते हैं 'जग पीड़ित हैं अति दुख से जग पीड़ित है अति सुख से।' पंतजी ने कहा-"बात सच है। देश की एकता एवं उन्नति सांस्कृतिक धरातल पर ही पनप सकती है।" मैंने उसकी पूर्ति के लिए विचारों के प्रचार का संकेत करते हुए 'विश्वधर्म' का जिक्र किया। पंतजी ने कहा-"मैं उस पत्र को लगातार देखता रहा हूँ। किन्तु संप्रदायों की शुष्क मान्यताओं की तरह इस पत्र में भी नीरसता और गहनता ज्यादा है। आप जानते हैं कि विचारों की अभिव्यक्ति में सरसता और संगति की बड़ी आवश्यकता है। कितना ही बड़ा प्रयास हो, किन्तु ग्राह्य एवं उपयोगी हुए बिना वह पनप नहीं सकता।"

पंत से बिदा ली

•

लगभग २ घन्टे तक यह चर्चा चलती रही। तरंगित नदी की तरह पंतजी की वाणी का प्रवाह और थिरकती हुई अंगुलियों की तूलिकाएँ शब्दों के रंग से शून्य के चित्रपट पर व्यष्टि और समष्टि के चलचित्रों का आकलन करती गयी। हमें अभी और २ मील जाना था। साँझ हो रही थी। पंतजी से बिदा होकर हम द्रौपदी घाट, श्री बी० एल० जैन के बंगले पर आकर ठहर गए। हमें यह कल्पना नहीं थी कि प्रयाग में हमें १०-१५ दिन रुकना पड़ेगा। ३-४ दिन के लिए हम गये थे। किंतु बीच में ही सौभाग्य मुनिजी के अस्वस्थ हो जाने के कारण रुकना पड़ा। उधर से विश्वधर्म के सम्पादक श्री सतीशजी भी आ पहुँचे। उनके मन में था कि पंतजी से पत्र के लिए सहयोग लिया जाय। हमारे मन में पहले से ही उनके प्रति एक आकर्षण बना हुआ था।

लगता है कि पंतजी को भी हमारे प्रति एक अनन्य अनुराग है। क्योंकि वे प्रतिदिन बी० एल० जैन सेफो न पर स्वास्थ्य-समाचार पूछ लिया करते थे। सतीशजी के आने की उनको सूचना दी गई। बहुत प्रेम के साथ वे दुबारा हमारे पास आये। खूब बातें हुईं। विश्व-

धर्म पत्र के सम्पादन के लिए जब उनसे कहा गया तो उन्होंने इस पत्र के तमाम पहलुओं को समझना चाहा। मेरे से और सतीशजी से पूरे विचार-विनिमय के बाद विश्वधर्म पत्र का सम्पादक बनना श्री पंतजी ने स्वीकार कर लिया। हमारा मन इस प्रसन्नता से भरा हुआ था। युगवाणी, युग प्रतिनिधि की ओर से ही प्रवाहित हो तो श्रेय और प्रेय दोनों के प्रति उचित न्याय हो सकेगा।

सफलता

प्रयाग-यात्रा को हम इसे सफलता समझते हैं। यद्यपि प्रयाग में विद्वानों और कलाकारों की कमी नहीं है। साहित्यकारों एवं बुद्धि जीवियों की लोलुपता और अहं मन्यताओं में उलझा हुआ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का भवन भी प्रयाग में ही स्थित है। किन्तु पंत के जीवन का उत्तरार्ध विश्वधर्म के लिये जितना उपयोगी हो सकता था वह अनुपमेय है।

१९ फरवरी शनिवार को बी० एल० जैन की कोठी से कानपुर के लिए हम रवाना हुए। नजदीक ही भक्त मंडली में उस दिन की रात बड़े आनन्दपूर्वक बीती। सुबह ५ मील चलकर हम बामरोली में श्री हंसराज कपूर के यहाँ आए। ऋषियों के तपोवन की तरह बड़ा शांत और स्वच्छ स्थान था। हवाई अड्डे पर काम करनेवाले और राष्ट्र का शासन चलानेवाले शासकीय वर्ग के लोगों को प्रशिक्षित करने का यह केन्द्र था। वहाँ के प्रिंसिपल, जो उस क्षेत्र के सबसे बड़े अधिकारी हैं, बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं। दो दिन हमें वहाँ ठहरना पड़ा। शासकीय विद्यार्थियों एवं शिक्षकों से मिलने का अच्छा मौका मिला। मैंने पाया कि जीवन के प्रति एक उदासी और भविष्य के प्रति एक गहरी निराशा उन सब पर छाई हुई है। वैचारिक नीयमान अवस्था में जिन स्वस्थ महत्त्वाकांक्षाओं की अपेक्षा की जा सकती थी, वे सब हमारे देश के युवकों के मानस से लुप्त हो रही है और अर्थ संचय अथवा भोग की आकांक्षा सब पर छाई हुई है। हालांकि सत्ता और सम्पत्ति में पलनेवाले जन समुदाय में भी बहुत से ऐसे संभ्रान्त, उच्च और उदात्त लोग हैं जिनके व्यवहार में समस्त आचार की सात्विकता और जिनके विचार में समूचे समन्वय की शालीनता सजीव हो उठी है।

अफसर का भोजन

भिक्षा के लिए हम एक घर गए। एक बड़े आफीसर का यह घर था। पर उनका भोजन इतना शुद्ध और सात्विक था कि राजसी और तामसिक भोजन का वहाँ अस्तित्व भी नहीं था।

लाल मिर्च और गरम मसाले, जो मन को उत्तेजित करते हैं, वहाँ नाम मात्र को भी नहीं थे। एक दूसरे घर गये। वहाँ हमने विरुद्ध एवं भिन्न विचारों के प्रति एक महान सहिष्णुता का दर्शन किया।

जैन साहब के बच्चे

बी० एल० जैन को हम बच्चों के सफल जीवन-निर्माण का एक योग्य आचार्य मानते हैं। उनके सभी बच्चों में अपने विचारों की इतनी साफ अभिव्यक्ति है, जो हमें अन्यत्र कम मिलती है। उसका कारण केवल एक ही है कि वे बच्चों के विचारों को पूरी तरह से सुनते हैं और अपनी बौद्धिकता, ज्ञानगरिमा तथा अनुभव वृद्धता के आतंक को बच्चों पर नहीं लादते, अपितु एक मित्र की तरह परामर्श-सा देते हैं। जो बच्चों के हृदय में धीरे से उतर जाता है। उनके मन में इसाई मिशनरियों द्वारा की गई सेवा के प्रति जहाँ कृतज्ञता है, वहाँ उनके द्वारा राष्ट्र-द्रोही एवं सांस्कृतिक घृणा-प्रसार के प्रति दुःख भी है। वे चाहते हैं कि स्कूल और कालेजों का संगठन हो तो इसाई मिशनरियों की तरह, किन्तु उनका संचालन भारतीय आत्मा के साधकों से हो। ये विचार हमने कितने ही विचारकों के सामने रखे। मैंने पाया कि इस देश में अच्छे विचारों को पसन्द करनेवालों की संख्या तो बहुत बड़ी है किन्तु उन अच्छे विचारों को क्रियान्वित करने का साहस बहुत कम लोगों में है। इस देश में रहनेवालों में सिर्फ इतनी सी कमी न होती, तो पिछली २ पंच वर्षीय योजनाओं में देश की समृद्धि का स्तर कहीं ऊँचा हो गया होता। किन्तु दुख है कि आध्यात्मिकता के प्रति जहाँ हम पारंपरिक रूढ़ हो गये हैं, वहाँ भौतिक या आर्थिक समृद्धि के प्रति भी हम भयंकर संकीर्ण और लोलुप बन गये हैं।

कानपुर

प्रयाग से कानपुर तक लगभग एक सौ बाईस मील की दूरी तय करनी पड़ती है। इस बीच में पचासों गाँवों में रहनेवालों के जीवन का दर्शन होता है। गंगा ने इस सारे देश की मिट्टी को बदल दिया है। सफेद मिट्टी इस देश की विशेषता है। सारे के सारे प्रदेश को आम और जामुन से लाद दिया है।

इस सबमें हम यह समझ पाये हैं कि देश अभी जीवित है, राष्ट्र अभी सप्राण है। क्योंकि अभी अहिंसा की सर्व समा संस्कृति के संस्कार जीवित हैं। यही एक आशा शेष है। अन्यथा मुद्रा स्फीति और भोग स्फीति, संचय और सत्ता स्फीति रोग के किटाणुओं की तरह जनता के जीवन में बिखर गये हैं।

हम ४ जनवरी को कानपुर पहुँच गए।

कानपुर

कानपुर

कानपुर उत्तर प्रदेश का औद्योगिक शहर है। उसमें लखनऊ की रंगीनी, आगरा की नज़ाकत, काशी का विद्या-विलास तथा प्रयाग की त्रिवेणी का संगम तो नहीं मिलता है, किन्तु धुआं उगलती हुई चिमनियाँ, अजदहों की तरह उफनते हुए बायलर, अशिक्षा की तरह कालिख पुते हुए बादल, और पागल तूफान की तरह धूल के फुव्वारे—कानपुर की ये अपनी विशेषताएं अवश्य हैं।

आज के उद्योग ने मनुष्य के पुरुषार्थ को और पुरुषार्थ के प्रतिफल को विभक्त कर दिया है। जिनके उद्यम पर यह समूचा उद्योग खड़ा है, वह

किसान और मज़दूर आज भी धूप में नंगा है और भयानक रात के अंधेरे सा काहिल है ।

कानपुर के विशाल मानव-परिवार में लक्ष्मी और दरिद्रता की प्रतिस्पर्धा ज़ोरों पर है । मज़ा इसमें है कि आज का लोककल्याणकारी राज्य धनवान को धन बाँट रहा है, धनहीनों को निर्धनता । उत्पादक और भोक्ता में एक गहरी खाई है । उसी का परिणाम है कि भारत का आभिजात्य वर्ग दलाली से दोनों को भूखों नचा रहा है और स्वयं सत्ता व सम्पत्ति का संचालन कर रहा है ।

शासन और आदेश धनवानों के तलवे सहलाने में व्यस्त है । पूरे गणतंत्र ने वोट के माध्यम से कानून के जाल में समूचे राष्ट्र को फँसा रखा है । प्रेम, न्याय और व्यवस्था सत्ताधीशों की चुहलबाज़ी बन गयी है । धर्म, धनवानों की यथावत् स्थिति बनाने में ढाल का काम दे रहा है । साधु आज अकेला पड़ गया है, क्योंकि जीवन की पहली सीढ़ी पर चढ़ने वाले विद्यार्थी उन्हें गए दिनों की याद अथवा पुरातत्त्व की शोभा समझते हैं । तर्क की सीढ़ी पर चढ़ने वाला बौद्धिक उन्हें परम्परा के लबादे अथवा ढकोसलों के पिटारे मानता है ।

जहाँ तक व्यापारी का प्रश्न है, वहां साधु का प्रभाव अवश्य है, किन्तु तभी तक जब तक धर्म चचँला लक्ष्मी को बांधे रखने का आश्वासन देता है । राजनीतिज्ञ के सामने केवल वोट है, वही परमेश्वर की अभिव्यक्ति और खुदाई का नूर है ।

अभी बड़े नगरों के धनवानों, मजदूरों तथा भक्ति-साधकों को धनलालसा व लक्ष्मी-ईर्ष्या से परे मैंने नहीं पाया, और कानपुर तो, जीवन के प्राथमिक चरण में है, उसे लक्ष्मी तथा उद्योग तो प्राप्त है, किन्तु तपोभूमि की सहज जिज्ञासा की तरह आत्मदर्शन की साध तथा व्यक्तिनिर्माण की उत्कण्ठा उसमें पूरे यौवन के साथ नहीं जगी है ।

शुक सँसार

एक विशेषता जो ताजमहल से भी अधिक आश्चर्यकारी और जीवन के सहज प्रश्न-सी व्यापक दिखाई दी. वह है—शुक संसार का रात्रि-निवास।

जब सूरज पश्चिम में ललाई उंडेलता है, तो कानपुर के आकाश पर लाखों शुक-शावकों की हरी-हरी पंक्तियां जेट विमानों की उड़ान की तरह छा जाती हैं। संभव है, संसार की यही एक ऐसी बस्ती हो, जहां प्रति संध्या को लाखों तोते वनों से आकर विश्राम करते हैं। इसके बाजार में लाखों कबूतर. चील, काग और मोती झील के पार हजारों सारस व बगुले एक साथ कानपुर में रात बिताते हैं।

याद

मैं कानपुर के उस सबसे बडे उद्योगपति की याद नहीं भुला सकता, जो जीवन के अंधेरे में बुद्धि का उजेला फैंकने का सफल प्रयास करता है और उन पक्षियों के विचित्र दृश्य को भी विस्मृत नहीं कर सकता जो समूची बस्ती को अपने मधुर कलरव से गुंजा देता है। धन की झंकार लोहे की टंकार तथा पक्षियों की गुंजार कानपुर के विचित्र गुण हैं।

13 फरवरी हमारे लिये कानपुर से विदाई का दिन था। भक्तों की भूली याद हमें आज भी हो जाती हैं! उनका मन बड़ा विचित्र था। भाग्य का बुढ़ापा देखने की बजाए भावनाओं की वासन्ती अधिक मूल्यवान

होती है। जीवन पर जवानी चमकती है तो इठलाकर मुस्कराना भी आकर्षण और सम्मोहन का कारण बन जाता है ! वसन्त की बहार नई अंकुरों में ताजगी व मांसलता उंडेल देती है, किन्तु बुढ़ापा खाँसकर जब पंजा मिलाता है तो मिलन की खिल-खिलाहट पर भी विषाद का कुहासा छा जाता है।

जीवन की दौड़ में हम चले जा रहे हैं। गंगा बही जा रही है, वायु दौड़ रही है, प्रत्येक परमाणु बहुत जोर से घूम रहा है, समूची पृथ्वी परिक्रमा कर रही है, भूगोल व खगोल जैसे परिवर्तन के महाशून्य में लय हो रहे हों, क्या विचित्र गतिमय विश्व है !

कन्नौज

कलकत्ता से कन्नौज तक गंगा की परम पावनी बयार हमें सहलाती रही है।

कानपुर से पच्चास मील कन्नौज का अतीत एक हजार वर्षों से सोया पड़ा है। चारों ओर अमराइयों की बहार, पठारों का चढ़ाव-उतार सुन्दर अवश्य लगता है, किन्तु संयोगिता का विद्रोह, जयचन्द का विश्वास-घात तथा पृथ्वीराज का संग्राम सब झूठे-से लगते हैं। इतिहास के पथ

पर जयचन्द को लेकर जो अलकतरा बिखेरा गया है वह साम्प्रदायिकता का प्रतिफल है। जयचन्द का केवल एक ही अपराध था कि वह बौद्ध था, कन्नौज के ब्राह्मणों को वह फूटी आँख न सुहाता था, उसी का प्रतिकार है, और समूची कहानी मनगढ़ंत लगती है।

पाठक जी

जलालाबाद के पाठक पण्डित की दर्द भरी दास्तान उस गरीब हिन्दुस्तान की कहानी है जहां पीड़ा है, किन्तु आँसू के लिये पानी सूख गया है।

पाठकजी एक कल-चक्की चलाते हैं। आटा पीसना, लकड़ी काटना, तेल पेरना आदि कितने ही व्यवसाय चला रखे हैं, तो भी भोजन व प्रतिष्ठा को बनाये रखने की समस्या मुंह बाये खड़ी है।

कहने लगे, "महाराज! हमारी ग्रामीण अवस्था के सम्बन्ध में मत पूछिये! आज से दस दिन पहले ग्राम के आधे आदमी भयावने अकाल की तरह भूखों मर रहे थे, किन्तु अब चने व गेहूं की फसल पक आई है,

सिट्टे निकल आये हैं, गेहूं की बालें झूम रही हैं, चारों ओर हरियाली सी छाई हुई है। लोगों को फसल के पकने से बड़ी राहत मिली है। अब लोग भूखों नहीं मर रहे हैं, क्योंकि हर आदमी अब चने जला कर होलों से अपना पेट भरने में समर्थ हो गया है या बाल भून कर गेहूं के दाने खाकर भगवान का शुक्र मना रहा है।

पंचायती पद्धति एवं लोक-कल्याणकारी राज्य का जिक्र करते ही पाठक जी का स्वर और जरा तेज हो गया, वाणी गहरी हो गई। रोष भरे शब्दों मे पाठकजी ने कहना प्रारम्भ किया :

"महाराज ! वयस्क मताधिकार एवं कानूनी गणराज्य ने हम सबको वर्गवाद तथा जात-पातवाद के घिनौने सीकचों में बंद कर दिया है। पद के भूखे जब चुनाव के मैदान में टिकट का लंगर बांध कर प्रतिद्वन्द्विता की आग में झुलसते हैं ; आक्रमण और प्रत्याक्रमण की लड़ाई वोट के ब्रह्मास्त्रों से जब प्रारंभ की जाती है, उस समय जातीय गठन, पारिवारिक प्रेम, देश, राष्ट्र व धार्मिक बन्धु-भाव सब होम कर दिये जाते हैं।

सरपंचों की लड़ाई में गांव दलों में विभक्त हो गये हैं। ग्रामीण आज पार्टीबाज़ी के प्रतिद्वेष में जल रहा है। टैक्स हमें जोंक की तरह चस रहे हैं, व्यापार के हर कोने पर टैक्स के क्रूर प्रहार पड रहे हैं। जीने के सब साधन, उद्योग के सब यंत्र, जीने और मरने के सब उपक्रम टैक्स के भार से अनिक्रान्त हो गये हैं। क्या किया जाये, कुछ समझ में नहीं आता ! यह राज्य है अथवा महाकाल का वज्रप्रहार !

चरैवेति

पाठकजी की करुण कहानी भुशुण्डी-कथा की तरह इतनी विस्तृत थी कि हम कहानी पूरी सुन न सके। चलने का समय हो गया। जी. टी. रोड का विशाल पथ और अनंत काल के हम अमर पथिक दिन की ढलती हुई धूप में चले जा रहे हैं। रात की गोद हमारा विश्रामागार है और दिन का उजेला ही हमारी गति है, चले जा रहे हैं। यह देखिये गंगाजी की सफेद मिट्टी हमने पार कर ली, जमनाजी का प्रसार क्षेत्र सामने आ रहा है। अब हम लोग उस स्थान पर आ पहुंचे हैं, जहाँ महारानी झाँसी का साथ देने वाले, अंग्रेजों के परम विरोधी, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अमर सेनानी

मैनपुरी के महाराज का महल है। जब तक देश में आजादी के दीवानों की याद गायी जायेगी, जब तक भारत माता के उन परम वीर भक्तसिंह की याद, जिसे सतलुज के किनारे ज़िंदा जलाया गया था, आती रहेगी ; रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा फाँसी के तख़्ते पर गाये गए देश के प्यार के गीत, गणेश शंकर विद्यार्थी के जोश भरे उपदेश और चन्द्रशेखर आजाद की चुनौतियाँ जब तक इस देश की हवा में गून्जती रहेंगी, तब तक मैनपुरी के बहादुर देश-भक्त और भारतीय संस्कृति के परम उपासक महाराज की भी याद सदा ताजी रहेगी। अब तो मैनपुरी एक जिला है– वैसा ही, जैसा कि दूसरा कोई जिला।

यह देखिये मैनपुरी से चालीस मील पर लाला छदामी लाल का जैन मन्दिर। यह फिरोजाबाद है, भारत भर की बहिनों का प्यारा ग्राम। क्यों कि यहाँ भारत में सर्वाधिक चूड़ियों का निर्माण तथा व्यवसाथ किया जाता है। काँच का केन्द्र है। काँच सुन्दर तो बहुत लगता है, उपयोगिता भी खूब है। उसमें बुराई एक ही है कि वह पानी के बुलबुले के समान मानव जीवन की तरह नग्न जल्दी हो जाता है। अपनी चमक प्यार के दिलों में छोड़ अवश्य जाता है, जिसने देखा होगा उसे मालूम होगा कि किसी की कलाई से कांच की चूड़ियाँ टूट कर जब गिरा करती हैं, तो हीरे जैसा कीमती दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाया करता है, अगर आदमी मरने से पहले इतना न भी करे तो उसके जीने को लानत है। हाँ, इस काँच के मे आदमी ने अपनी साध को मिट्टी और पत्थरों में लपेट कर मौत से बचने की चहारदीवारी बनाई है।

मिट्टी से जो कुछ पैदा होता है वह मिट्टी की गोद में ही सो जाता है, किन्तु मिट्टी कोटी-कोटी वर्षों में भी; मौत के अनन्त झटकों में भी जाग्रत रही है।

आगरा

आगरा

यह आगरा है, अध्यात्मज्ञानी आगरा ! पण्डित बीकानेर वाला आगरा तो कहाँ बसा है—मालूम नहीं ! हाँ प्रेयसी के प्यार में डूबे रहने वाले शाहजहां ने हकूमत के बल से पूनम की चान्दनी में धवलिया उंडेलने वाले श्वेत पत्थरों को कुछ कला या व्यवस्था ऐसी दे दी है कि ताजमहल का प्रत्येक पत्थर शाहजहां की कमनीय कामना का सजीवता के साथ प्रतिनिधि बन गया है । प्रकृति स्वयं असीम सौन्दर्य-राशि से लदी पड़ी है और यदि मानव उसे कला की वाणी दे दे तो फिर कहना ही क्या ! आप, संभव है, भूल न जायें कि सिकंदरा उस महान् अकबर की चिर–

स्मृति है जो अपने सलीम के विद्रोह से ऊब गया था और अपने इकबाल का बुढ़ापा देखना नहीं चाहता था। अकबर के मकबरे के चारों ओर आज भी सारनाथ के मृगदाव की तरह हजारों मृगों का निर्भयता पूर्वक संचरण तथा लंगूरों की किलकारियां जिस उल्लास की सृष्टि करती हैं उससे अकबर के धर्म-प्रेम की याद आ जाती है। जैनाचार्य श्री हीरविजयजी के कहने से अकबर ने वर्ष में 9 महीने मांस खाना छोड़ दिया था और शिकार खेलना बंद कर दिया था। जैनियों के महापर्व पर्युषण के महीने भाद्रपद में उसने समूचे देश में पशुबध कानून निषिद्ध कर दिया था।

वैसे आगरा केवल मुगलों के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है, वहां लोहामण्डी का जैन स्थानक भी कलाकृति का उत्कृष्ट उदाहरण है, णमोक्कार मंत्र तथा भारत वर्ष का पुरावृत्त व जैन भौगोलिक व्यवस्था को देश के महान् चिंतक उपाध्याय अमर मुनि के तत्वावधान में कलाकार की तूलिका ने कुछ इस प्रकार चित्रित किया है कि वह देखते ही बनता है।

साहित्य-गगन के उज्जवल नक्षत्र और पीयूष घट के लेखक विजय मुनिजी का मैं उपकारी हूं कि उन्होंने महती कृपा कर उस चित्रकारी के अज्ञात रहस्यों को समझाने में मेरी बड़ी मदद की। उन्हीं की कृपा से मैं परम तपस्वी स्वामी रतनचन्द महाराज की छत्री (स्मारक) देख पाया। यही नहीं, उन्होंने सिकन्दरा तक मेरे साथ यात्रा कर अपने पूरे अनुभवों एवं प्रकृति के अज्ञात रहस्यों को समझाने में अमूल्य सहयोग दिया।

विजय मुनिजी भी हमारे उन साथियों में से हैं, जो अपनी गहरी याद दिलों में बना दिया करते हैं। सिकन्दरा से पहले ही वह भविष्य में सहयात्रा करने का आश्वासन देकर आंख-मिचौनी की तरह हमसे अलग चले गये। गुरु-सेवा का भाव उनका सराहनीय है। किन्तु हमारे सामने तो यात्रा का महासमर पार करना बाकी है।

आगरे की यात्रा अभी चल रही है, वही आगरा जहां से मुगल शासन की दुपहरी हिन्दुत्व की चमक को म्लानमुखा बनाती आ रही है। बहुत उत्थान एवं पतन आगरे की गोद में सोये पड़े हैं। प्रणय का अभिसार व वैराग्य की चरम अनुभूति आगरे के कण-कण में छिपी पड़ी है। जब से अकबर ने आगरे को दिल्ली से जोड़ा है, तब से आगरे का विस्तार दिल्ली एवं दिल्ली का विस्तार आगरा बन गया है। दिल्ली व आगरे में राजनीति हजारों वर्षों से अपने खेल दिखाती रही है। इधर इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और उधर मथुरा में पाण्डवों, कौरवों तथा योगीराज कृष्ण की अनासक्त कर्मलीला का अध्याय सम्पादित होता रहा है। विश्व के इतिहास को शायद मैं अधिकार पूर्वक चुनौति न दे सकू, किन्तु जहां तक मेरी जानकारी का सवाल है, कृष्ण की राजनीति विचित्र राजनीति है, और उसकी महान राजनीति की कर्मभूमि और भी विचित्र है, जो सम्भव है, उसकी उपादान कारण रही हो।

भूमि

पलासी का मैदान और चित्तौड़ का खूनी दरवाजा, दोनों मैंने देखे हैं। दोनों में बड़ी विलक्षणता है, चित्तौड़गढ़ से लड़ने वाले दोनों पक्ष वफादारी से लड़े और समाप्त हो गये। वर्षों तक घेरे में फँसे रहने पर एक भी बलवान सेनापति गद्दार नहीं निकला, किन्तु पलासी की लड़ाई में अंग्रेजों व सिराजुद्दौला दोनों की ओर से युद्ध की उद्घोषणा अवश्य हुई, हालांकि लड़ाई शस्त्रों की न होकर गद्दारी की हुई। मीर जाफर, सेठ अमीचन्द, मीर कासिम सभी गद्दारी पर तुले थे। आखिर सिराजुद्दौला के ५० हज़ार सिपाही अंग्रेजों का मुकाबिला न कर सके।

क्लाइव की भी यह हिम्मत नहीं हुई कि वह मैदान में डटा रहे; वह भी भाग निकला। खैर, पीछे जो कुछ हुआ सो हुआ, हमारे कहने का यह आशय है कि भूमि का बहुत बड़ा महत्त्व है। भूमि मनुष्य के मन को पापी एवं धर्मात्मा बनाने में एक शक्तिशाली निमित्त रही है। भूमि के कारण ही श्रवण जैसे माता-पिता के भक्त का मन भी इतना बदल गया कि वह उनसे अपनी की गई सेवा का मूल्य मांगने लग पड़ा। लक्ष्मण जैसा ब्रह्मव्रती महामाता सीता पर कुदृष्टि वाला हो गया, अर्जुन व भीम जैसे आज्ञाकारी युधिष्ठिर के विरुद्ध षड्यंत्र करने के लिए तैयार हो गये। ये सब पौराणिक उदाहरण भूमि के वातावरण व उसके प्रभाव की गाथा सुना रहे हैं। यही क्या, आगरे से आप मथुरा पहुंचते हैं। मथुरा और वृन्दावन में ६ मील का अन्तर है। मथुरा के पंडे और वृन्दावन के भक्तों का दर्शन आपने किया होगा। अन्यथा यह तो आपने अवश्य देखा ही होगा कि मथुरा व्यापार व विलास की बुद्धि को पनपाती है और वृन्दावन भक्ति के उद्रेक को।

मथुरा-वृन्दावन

बिड़ला-कला

मथुरा में हमारा मन नहीं लगा, रात भर विश्राम करते ही प्रातःकाल बिड़ला धर्मशाला में आकर ठहर गये। बिड़ला धर्मशाला मथुरा एवं वृन्दावन के मध्य में बनाई गई है। बिड़लाजी ने भारत भर में मन्दिर, धर्मशाला, हास्पीटल, कालेज, फैक्टरियों की तरह बिछा दिये हैं। बिड़लाजी की अपनी एक विशेषता है। वह है—उनके आर्यत्व प्रेम की। बिड़ला-परिवार के समूचे जीवन में आर्यत्व व हिन्दुत्व के प्रति जो गहरी आस्था है और उसकी समस्त शृङ्खलाओं को एक सूत्र में जोड़ने की

जो उमंग है वह अनुपम है। भारती मां के इस पुत्र ने आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान में जितना भगीरथ प्रयास किया है, वह हिन्दुत्व के इतिहास में अकेला है। लक्ष्मी-पुत्र संस्कृति का वरदपुत्र बन जाये, यह बिरुद केवल बिड़लाजी को ही प्राप्त है। सम्भव है आने वाले दिन भारतीय वास्तुकला के पारखी बिड़ला के मन्दिर व धर्मशाला प्रासादों को बिड़ला-कला की संज्ञा दें। आप कहीं भी चले जाइये, बनारस हिन्दू विश्व विशालय में जाकर चाहे विश्वनाथ मन्दिर देखिये, मथुरा में धर्मशाला अथवा दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मन्दिर निहारिये, आप पायेंगे बिड़लाजी की कृति अपने आपमें भारतीय व बौद्ध जगत् की वास्तुकला का एक ऐसा अनूठा और उत्कृष्ट उदाहरण बन गई है कि उसे कला-संगम कहें या मौलिक स्वरूप, कुछ कहते नहीं बनता। यद्यपि उसमें मीनाक्षी मन्दिर जैसी घाटियों सी ऊंचाईयां अथवा आबू जैन मन्दिर जैसी सूक्ष्म कला दिखाई नहीं देती। किन्तु बर्मा के पगौड़ों-सी छतरियां, बौद्ध मन्दिर-सी चोटियां, जैन-मन्दिर सा अनूठापन हमें ऐसा घुला-मिला दिखाई देता है, जैसे कला के फूलों का गुलदस्ता तैयार किया हो। आप बिड़ला धर्मशाला देखिये। किले जैसी दीवारें, आधुनिक आफिसों जैसी व्यवस्था, राजमहलों सी शालीनता तथा तपोवनों-सी पवित्रता एक साथ आपको देखने को मिलेगी।

मथुरा धर्मशाला में दो दिन ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ, वहां के मैनेजर श्री देवधरजी स्वयं बहुत ही योग्य, कलामर्मज्ञ तथा आर्यसंस्कृति के परम उपासक हैं। उनसे वार्तालाप का आनन्द भी खूब मिला। सांझ के समय मथुरा के कुछ इने-गिने चिंतकों में उन्होंने भारतीय संस्कृति के स्रोत पर एक प्रवचन का प्रबंध भी किया। यद्यपि सुनने वाले बहुत ही स्वल्प थे, किन्तु वृन्दावन की मधुर बयार हमें इस प्रकार सहला रही थी कि उस अनिर्वचनीय उल्लास का वर्णन शब्दों में किया ही नहीं जा सकता।

वृन्दावन

रात भर ध्यान एव समाधि का, निद्रा-परिहार तथा चिंतन का खूब आनन्द मिला। प्रातः उठते ही वृन्दावन का रास्ता लिया। वृन्दावन में देखने के लिये सिवाय मन्दिरों के और कुछ भी नहीं है। चारों ओर मन्दिर ही मन्दिर हैं। राधेश्याम, राधेश्याम की ध्वनि के सिवाय दूसरा शब्द सुनने को भी कम मिलता है। कहते हैं कि उस छोटे-से वृन्दावन में ५ हजार मन्दिर हैं। किसी भी ऊंची छत पर चढ़कर देख लीजिये, वृन्दावन मन्दिरों के शिखरों से चमक रहा है। किसी बाजार, गली में निकल जाइये मन्दिर अवश्य मिलेंगे। प्रायः हर आदमी भगवान-भक्त है। सगुण

उपासना का खूब प्राबल्य है। चारों ओर सखा तथा दास्य भक्ति का प्रवाह बह रहा है। कम-से-कम मेरे लिये तो यह पहला उदाहरण है कि भारत का कोई भी नगर या ग्राम समूचा भगवान का भक्त हो। समूचा अधिकांश को प्रकट करता है। सम्भव है वहाँ दूसरे प्रकार के अभक्त लोग भी रहते हों। किन्तु मैं चार-पांच घन्टे वृन्दावन में घूमा, मूझे तो ऐसा लगा की सारा वृन्दावन भक्ति में भावविभोर हो रहा है। सैंकड़ों या हजारों वर्षों से यह भक्ति-प्रवाह बह रहा है। आज तक उस में अश्रद्धा या नास्तिकता का रंग पैदा नहीं हुआ। सभी भक्त लोग भक्ति की यमुना में सतत स्नान करने में व्यस्त हैं।

भक्त-हृदय कविशिरोमणी सूरदास की कविता-मंदाकिनी वृन्दावन के आसपास ही बही थी। मथुरा रोड के पास ही एक झील पर उनका आश्रम है, जहां बैठकर अपनी बन्द आंखों से बालसुलभ चेष्टाओं तथा कृष्ण की बाल लीलाओं को सूरदास ने निहारा था। आगरे एवं दिल्ली के बीच में रहने वाले लोग अपेक्षाकृत बनारसीय यू० पी० से अधिक बलवान हैं। किन्तु काशी, कानपुर तथा कन्नौज की अमरांइयों की जगह इधर चारों ओर बबूल-पंक्तियां लदी खड़ी हैं। इसी से खीझकर किसी कवि ने ठीक कहा था कि :

"कहीं-कहीं बृजराज की गई चौकड़ी भूल।
काबुल में मेवा कियो बृज में कियो बबूल॥"

वृन्दावन के वन उपवनों में करील, सांगर, कीकर जैसी कांटेदार झाड़ियां ही चारों ओर छाई पड़ी हैं। माना कि आर्यन देश, आर्यन जाति का विशुद्ध रक्त, आर्यों की लम्बी नाक, विशालभाल, पुस्तकी चेहरा, गम्भीर कर्णपाली, उभरा मस्तक, सबल भुजदण्ड, गौर वर्ण श्यामल लोचन, घुंघराले मजबूत केश जैसे कि आर्यों के बताये जाते हैं वे सब ब्रजदेश के रहने वाले ग्रामीणों में पाए जाते हैं। ब्रजबालाओं का लाल गुलाल जब होली पर उड़ता है तो ब्रजदेश का कण-कण थिरकने लगता है। होली खेलो रसिया, पर जब ताल व मृदंग बजना प्रारम्भ

होता है तो भू और नभ अबीर की लाली में डूब जाते हैं। गुलाल की लाली ऊषा को खींचकर संध्या के साथ एकाकार कर देती है। ब्रज मस्ती का देश है। ऐसे ही प्रदेश में रहकर योगीराज कृष्ण जैसे महान पुरुषों ने कह दिया कि : "नाहं वसामि बैकुण्ठे" और ब्रज का आनन्द बैकुण्ठ से भी बढ़ गया।

अवधूत साधु-साध्वी

वृन्दावन से चल पड़े हैं, रह रहकर याद अवश्य आ रही है। यमुना के किनारे पर अवधूत साधु और साध्वी (पति-पत्नी) का मिलन भी विचित्र था। सात्विक अघोरी-से लगते थे, केवल दोनों के तन पर फटी-सी कौपीन के सिवाय और कुछ नहीं था। करील के सूखे झाड़-सा शरीर, जले हुए घास-से बाल, शुष्क तालाब की खपड़ैल मिट्टी-सा चर्म, शेर के नाखूनों-से पंजे, शिकारी बैटरी की तरह जलते हुए नयन, पुरानी बाम्बी की तरह तन पर चढ़ी हुई सेरों मिट्टी, वनैले प्रेतकाय की तरह बड़े विचित्र लग रहे थे। हम उनके पास अपना आसन जमाये हुए १५-२० मिनट बैठे

रहे। कुछ देर बाद उन्होंने सिगरेट पी, आँखों से जरा अनमने मन से देखा- जैसे वह कह रहे हों, पूछो कुछ पूछना हो तो। मेरी जिज्ञासा रह न सकी, पूछ ही लिया—"क्या आप बतायेंगे समाधि का सार क्या है। कुंडलनी योग का जागरण किस प्रकार होता है ? योगी सुषुम्नाप्रवेश करके कैसा आनन्द अनुभव करते हैं ?"

अभी प्रश्न पूरा नहीं हो पाया था कि वे झपाटेबन्द आटे की मशीन की तरह फकफक इंग्लिश में बोलने लगे। बहुत ऊंचे दर्जे की इंग्लिश। जब वे बन्द होते तो उनकी अवधूत पत्नी बोलने लग जाती। संस्कृत, टूटीफूटी हिन्दी, धारा प्रवाह इंग्लिश और ओजपूर्ण बंगला—वे क्रमशः बोलते। उनकी सारी भाषा हमारे कुछ अधिक समझ में नहीं आई। हालांकि वे उपनिषद् के मन्त्र बोल रहे थे और बीच-बीच में शब्द भी समझ में आते थे, किन्तु उनके समूचे वाक्य की संगति नहीं बैठती थी।

हम वहां से चले आये। लोग कह रहे थे कि पन्द्रह-बीस वर्षों से ये दोनों इसी प्रकार रहते हैं, बोलते ही नहीं हैं, किसी से मांगते नहीं, नितांत अपरिग्रही, स्वल्प और अयाचित भोजन वह भी एक बार, बस उनकी यही दिनचर्या है। सिगरेट कोई दे दे तो पी लें, एक बार भोजन दे दें तो भोजन कर लें। आप पर खुश हो गये तो बोलते रहे। हमारे लिए यह भी एक विचित्र अनुभव था। जीवन एक विलक्षण प्रयोगशाला है। किसी भी प्रकार का इस पर प्रयोग किया जा सकता है। लाखों-करोड़ों वर्षों से मनुष्य इस शरीर पर प्रयोग करता आया है। बुद्धि से निर्णय, हृदय से श्रद्धा, चितिशक्ति से अनुभव और शरीर के अंगों से पुरुषार्थ—एक साथ इस शरीर से किया जा सकता है। समूचे जगत के पदार्थों का शरीर समवाय है ; भू एवं गगन की ज्योतियों का संगम-स्थल है। कांशी से चलकर एक दूसरे महात्मा हमें मिले, वे अपने गुरु का जीवन-वर्णन सुना रहे थे :—

"मेरे गुरु महाराज पटियाला के वंशज थे। राज्यघराने के क्लेश से क्लान्त होकर घर से अलग हो गये। उदासीनता ने उन्हें प्रभु-प्रेम में

पगा दिया, वे सन्यासी बन गये। सन् १६५८ में उनका स्वर्गवास हुआ। १८५ वर्ष की उनकी आयु थी। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में परशुराम कुण्ड आसाम में वे दर्शनार्थ गये थे। कुण्ड के समीपवर्ती साधु ने कहा कि महाराज कैसे आये, तो उत्तर में उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में एक मात्र आशा दर्शनपूर्ति का जिक्र किया। साधु से नहीं रहा गया। साधु ने कहा–महाराज, वृद्धावस्था में क्यों भय करते हो? छह मास मेरी औषधि लीजिए। केवल एक ही कायाकल्प का चमत्कार देखिये। महाराज, पार्वतीय गुफा में छह मास तक औषधोपचार करते रहे। उसी का प्रतिफल था कि उनकी समूची देह जरा-जीर्ण अवस्था से निकलकर यौवन में परिवर्तित हो गई। ८०-८५ वर्ष का वृद्ध १८ वर्ष का जवान बन गया। चमड़ी बदल गई, दाँत नये आ गये, काले केश मण्डराने लग पड़े, जीवन में वसन्त छा गया। जीवन शक्ति की घटा लहराने लगी। इसी प्रकार दो-तीन बार उन्होंने जीवन में कायाकल्प का प्रयोग किया, आजीवन उनकी जवानों-सी चमक और कुन्दन-सी दमक उनके चेहरे पर चमकती रही। १८५ वर्ष की उमर में एक दिन उन्होंने कहा कि भाई अब हमारी याद मत करना. बस चादर ओढ़ते ही वे विदा हो गये। मैं अब अकेला रह गया हूं। मैं भी अन्न नहीं खाता हूं। केवल एक सेर गोदुग्ध पान करता हूं और ब्रह्मरसयान अथवा ज्योतिष्मती रसायन का सेवन करता हूं। निद्रा मुझे आती नहीं। मैं सारा दिन घूमता हूं तो थकता नहीं, प्राणायाम भी करता हूं, अन्तर्नाद एवं अन्त: प्रकाश का मुझे दर्शन होता रहता है। मैं चाहता हूं कि संसार गुरूदेव की प्रसादी का लाभ उठाये। याद रखिये, यह रसायन केवल ब्रह्मचारी और प्रभु के भक्तों के ही काम की है, विषय-वासना के भूले लोगों के लिए उसमें कुछ भी नहीं है।"

फरीदाबाद का मन्दिर, धर्मशाला वाला वह बाबा भी विचित्र था, जहां हम एक रात और दो दिन ठहरे। वह केवल भंग पीता था, एक बार दो बार, किन्तु आसन का इतना पक्का था कि शीत, ताप, आंधी-वर्षा सभी ऋतुओं में अपना आसन एक ही वृक्ष के नीचे जमाये

रखता था—उसके जीवन का क्या लक्ष्य था। यह कहा नहीं जा सकता किन्तु जनता की भलाई ; पथिकों की सेवा और मन्दिर पूजा की तरफ उसका मन अवश्य था। विद्या व चिंतन का वहां प्रवेश नहीं था। आत्मसाक्षात्कार अथवा परमार्थ साधन जैसी भी वहां कोई बात नहीं थी। किन्तु जीवन बड़ा गतिशील था। उद्यम पुरुषार्थ की वह सजीव मूर्ति था। उसके जीवन को देखते ही उस निर्जन शून्य घाटी के फूल की याद आ गई, जो अपनी समूची सौंदर्य-राशि बिखेरता हुआ खिलता है और बिना किसी की प्रशंसा पाए अनंत धूल में विलय हो जाता है।

हम अब दिल्ली की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं और काली कोठरी की काजल की तरह धुआं फुफकारती हुई मिलों को देख रहे हैं। यह सामने ओखला है, यह दिल्ली की यांत्रिक बस्ती है।

आगरा और उसके बाद

आगरे की यात्रा अभी चल रही है, वही आगरा जहाँ से मुगल शासन की दुपहरी हिन्दुत्व की चमक को म्लानमुखा बनाती आ रही है। बहुत उत्थान एवं पतन आगरे की गोद में सोये पड़े हैं। प्रणय का अभिसार व वैराग्य की चरम अनुभूति आगरे के कण-कण में छिपी पड़ी है। जब से अकबर ने आगरे को दिल्ली से जोड़ा है, तब से आगरे का विस्तार दिल्ली एवं दिल्ली का विस्तार आगरा बन गया है। दिल्ली व आगरे में राजनीति हजारों वर्षों से अपने खेल दिखाती रही है। इधर इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और उधर मथुरा में पाण्डवों, कौरवों तथा योगीराज कृष्ण की अनासक्त कर्मलीला का अध्याय सम्पादित होता रहा है। विश्व के इतिहास को शायद मैं अधिकारपूर्वक चुनौती न दे सकूँ, किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी का सवाल है, कृष्ण की राजनीति विचित्र राजनीति है, और उसकी महान राजनीति की कर्मभूमि और भी विचित्र है, जो सम्भव है उसकी उपादान कारण रही हो।

भूमि

पलासी का मैदान और चित्तौड़ का खूनी दरवाजा, दोनों मैंने देखे हैं। दोनों में बड़ी विलक्षणता है, चित्तौड़गढ़ से लड़ने वाले दोनों पक्ष वफादारी से लड़े और समाप्त हो गये, वर्षों तक

घेरे में फँसे रहने पर एक भी बलवान सेनापति गद्दार नहीं निकला, किन्तु पलासी की लड़ाई में अंग्रेजों व सिराजुद्दौला दोनों की ओर से युद्ध की उद्घोषणा अवश्य हुई, हालाँकि लड़ाई शस्त्रों की न होकर गद्दारी की हुई। मीर जाफर, सेठ अमीचन्द, मीर कासिम सभी गद्दारी पर तुले थे। आखिर सिराजुद्दौले के ५० हजार सिपाही अंग्रेजों का मुकाबिला न कर सके। क्लाइव की भी यह हिम्मत नहीं हुई कि वह मैदान में डटा रहे, वह भी भाग निकला। खैर, पीछे जो कुछ हुआ सो हुआ, हमारे कहने का यह आशय है कि भूमि का बहुत बड़ा महत्त्व है। भूमि मनुष्य के मन को पापी एवं धर्मात्मा बनाने में एक शक्तिशाली निमित्त रही है। भूमि के कारण ही श्रवण जैसे माता-पिता के भक्त का मन भी इतना बदल गया कि वह उनसे अपनी की गई सेवा का मूल्य मांगने लगा पड़ा। लक्ष्मण जैसा ब्रह्मव्रती महामाता सीता पर कुदृष्टि वाला हो गया, अर्जुन व भीम जैसे आज्ञाकारी युधिष्ठिर के विरुद्ध षड्यंत्र करने के लिये तैयार हो गये। ये सब पौराणिक उदाहरण भूमि के वातावरण व उसके प्रभाव की गाथा सुना रहे हैं। यही क्या, आगरे से आप मथुरा पहुँचते हैं। मथुरा और वृन्दावन में ६ मील का अन्तर है, मथुरा के पंडे और वृन्दावन के भक्तों का दर्शन आपने किया होगा। अन्यथा यह तो आपने अवश्य देखा ही होगा कि मथुरा व्यापार व विलास की बुद्धि को पनपाती है और वृन्दावन भक्ति के उद्रेक को।

बिड़ला-कला

मथुरा में हमारा मन नहीं लगा, रात भर विश्राम करते ही प्रातःकाल बिड़ला धर्मशाला में आकर ठहर गये। बिड़ला धर्मशाला मथुरा एवं वृन्दावन के मध्य में बनाई गई है। बिड़लाजी ने भारत भर में मन्दिर, धर्मशाला, स्कूल, हास्पीटल, कालेज, फैक्टरियों की तरह बिछा दिये हैं। बिड़लाजी की अपनी एक विशेषता है। वह है उनके आर्यत्व प्रेम की। बिड़ला परिवार के समूचे जीवन में आर्यत्व व हिन्दुत्व के प्रति जो गहरी आस्था है और उसकी समस्त शृङ्खलाओं को एक सूत्र में जोड़ने की उमंग है वह अनुपम है। भारती माँ के इस पुत्र ने आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान में जितना भगीरथ प्रयास किया है, वह हिन्दुत्व के इतिहास में अकेला है। लक्ष्मी-पुत्र संस्कृति का वरदपुत्र बन जाये, यह बिरुद केवल बिड़लाजी को ही प्राप्त है। सम्भव है आने वाले दिन भारतीय वास्तुकला के पारखी बिड़ला के मन्दिर व धर्मशाला प्रासादों को बिड़ला-कला की संज्ञा दें। आप कहीं भी चले जाइये, बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में जाकर चाहे विश्वनाथ मन्दिर देखिये, मथुरा में धर्मशाला अथवा दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मन्दिर निहारिये, आप पायेंगे बिड़लाजी की कृति अपने आपमें भारतीय व बौद्ध जगत् की वास्तुकला का एक ऐसा अनूठा

और उत्कृष्ट उदाहरण बन गई है कि उसे कला-संगम कहें या मौलिक स्वरूप, कुछ कहते नहीं बनता। यद्यपि उसमें मीनाक्षी मन्दिर जैसी घाटियों सी ऊँचाइयाँ अथवा आबू जैन मन्दिर जैसी सूक्ष्म कला दिखाई नहीं देती। किन्तु बर्मा के पगौडों-सी छतरियाँ, बौद्ध मन्दिर-सी चोटियाँ, जैन-मन्दिर-सा अनूठापन हमें ऐसा घुला-मिला दिखाई देता है, जैसा कला के फूलों का गुलदस्ता तैयार किया हो। आप बिड़ला धर्मशाला देखिये। किले जैसी दीवारें, आधुनिक आफिसों जैसी व्यवस्था, राजमहलों-सी शालीनता तथा तपोवनों-सी पवित्रता एकसाथ आपको देखने को मिलेगी।

मथुरा धर्मशाला में दो दिन ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ, वहाँ के मैनेजर श्री देवधरजी स्वयं बहुत ही योग्य, कलामर्मज्ञ तथा आर्यसंस्कृति के परम उपासक हैं। उनसे वार्तालाप का आनन्द भी खूब मिला। साँझ के समय मथुरा के कुछ इने-गिने चिंतकों में उन्होंने भारतीय संस्कृति के स्रोत पर एक प्रवचन का प्रबंध भी किया। यद्यपि सुनने वाले बहुत ही स्वल्प थे, किन्तु वृन्दावन की मधुर बयार हमें इस प्रकार सहला रही थी कि उस अनिर्वचनीय उल्लास का वर्णन शब्दों में किया ही नहीं जा सकता।

वृन्दावन

रात भर ध्यान एवं समाधि का, निद्रा परिहार तथा चिंतन का खूब आनन्द मिला। प्रातः उठते ही वृन्दावन का रास्ता लिया। वृन्दावन में देखने के लिये सिवाय मन्दिरों के और कुछ भी नहीं है। चारों ओर मन्दिर ही मन्दिर हैं। राधेश्याम, राधेश्याम की ध्वनि के सिवाय दूसरा सुनने को भी कम मिलता है। कहते हैं कि उस छोटे-से वृन्दावन में ५ हजार मन्दिर हैं। किसी भी उँची छत पर चढ़कर देख लीजिये, वृन्दावन मन्दिरों के शिखरों से चमक रहा है। किसी बाजार, गली में निकल जाइये मन्दिर अवश्य मिलेंगे। प्रायः हर आदमी भगवान-भक्त है। सगुण उपासना का खूब प्राबल्य है। चारों ओर सखा तथा दास्य भक्ति का प्रवाह बह रहा है। कम-से-कम मेरे लिये तो यह पहला उदाहरण है कि भारत का कोई भी नगर या ग्राम समूचा भगवान का भक्त हो। समूचा अधिकांश को प्रगट करता है। सम्भव है वहाँ दूसरे प्रकार के अभक्त लोग भी रहते हों, किन्तु मैं चार-पाँच घण्टे वृन्दावन में घूमा। मुझे तो ऐसा लगा कि सारा वृन्दावन का वृन्दावन भक्ति में भावविभोर हो रहा है। सैंकड़ों या हजारों वर्षों से यह भक्ति-प्रवाह बह रहा है आज तक उसमें अश्रद्धा या नास्तिकता का रंग पैदा नहीं हुआ। सभी भक्त लोग भक्ति की यमुना में सतत स्नान करने में व्यस्त हैं।

भक्त-हृदय कविशिरोमणी सूरदास की कविता मंदाकिनी वृन्दावन के आसपास ही बही थी। मथुरा रोड के पास ही एक झील पर उनका आश्रम है। जहाँ बैठकर अपनी बन्द आँखों से बालसुलभ चेष्टाओं तथा कृष्ण की बाल लीलाओं को सूरदास ने निहारा था। आगरे एवं दिल्ली के बीच में रहने वाले लोग अपेक्षाकृत बनारसीय यू० पी० से अधिक बलवान हैं। किन्तु काशी, कानपुर तथा कन्नौज की अमराइयों की जगह इधर चारों ओर बबूल-पंक्तियां लदी खड़ी हैं। इसी से खीझकर किसी कवि ने ठीक कहा था कि :

"कहीं-कहीं बृजराज की गई चौकड़ी भूल।
काबुल में मेवा कियो बृज में कियो बबूल॥"

वृन्दावन के वन उपवनों में करील, सांगर, कीकर जैसी कांटेदार झाड़ियाँ ही चारों ओर छाई पड़ी हैं। माना कि आर्यन देश, आर्यन जाति का विशुद्ध रक्त, आर्यों की लम्बी नाक, विशाल भाल, पुस्तकी चेहरा, गम्भीर कर्णपाली, उभरा मस्तक, सबल भुजदण्ड, गौर वर्ण श्यामल लोचन, घुँघराले मजबूत केश जैसे कि आर्यों के बताये जाते हैं वे सब ब्रजदेश के रहने वाले ग्रामीणों में पाए जाते हैं। ब्रजबालाओं का लाल गुलाल जब होली पर उडता है तो ब्रजदेश का कण-कण थिरकने लगता है। होली खेलो रसिया, पर जब ताल व मृदंग बजना प्रारम्भ होता है तो भू और नभ अबीर की लाली में डूब जाते हैं। गुलाब की लाली ऊषा को खींचकर संध्या के साथ एकाकार कर देती है। ब्रज मस्ती का देश है, ऐसे ही प्रदेश में रहकर योगीराज कृष्ण जैसे महान पुरुषों ने कह दिया कि : "नाहं वसामि वैकुण्ठे" ब्रज का आनन्द वैकुण्ठ से भी बढ़ गया।

अवधूत साधु-साध्वी

●

वृन्दावन से चल पड़े हैं, रह रहकर याद अवश्य आ रही है। यमुना के किनारे पर अवधूत साधु और साध्वी (पति-पत्नी) का मिलन भी विचित्र था। सात्विक अघोरी-से लगते थे, केवल दोनों के तन पर फटी-सी कौपीन के सिवाय और कुछ नहीं था। करील के सूखे झाड़-सा शरीर, जले हुए घास-से बाल, शुष्क तालाब की खपड़ैल मिट्टी-सा चर्म, शेर के नाखूनों-से पंजे, शिकारी बैटरी की तरह जलते हुए नयन, पुरानी बाम्बी की तरह तन पर चढ़ी हुई सेरों मिट्टी, बनैले प्रेतकाय की तरह बड़े विचित्र लग रहे थे। हम उनके पास अपना आसन जमाये हुए १५-२० मिनिट बैठे रहे। कुछ देर बाद उन्होंने सिगरेट पी, आँखों से जरा अनमने मन से देखा—जैसे वह कह रहे हों, पूछो कुछ पूछना हो तो। मेरी जिज्ञासा रह न सकी, पूछ

ही लिया—"क्या आप बतायेंगे समाधि का सार क्या है। कुंडलनी योग का जागरण किस प्रकार होता है ? सुषुम्नाप्रवेश योगी करके कैसा आनन्द अनुभव करते हैं !"

अभी प्रश्न पूरा नहीं हो पाया था कि वे झपाटेबन्द आटे की मशीन की तरह फकफक इंग्लिश में बोलने लगे। बहुत ऊँचे दर्जे की इंग्लिश, जब वे बन्द होते तो उनकी अवधूत पत्नी बोलने लग जाती। संस्कृत, टूटीफूटी हिन्दी, धाराप्रवाह इंग्लिश और ओजपूर्ण बंगला वे क्रमशः बोलते। उनकी सारी भाषा हमारे कुछ अधिक समझ में नहीं आई। हालाँकि वे उपनिषद् के मन्त्र बोल रहे थे और बीच-बीच में शब्द भी समझ में आते थे, किन्तु उनके समूचे वाक्य की संगति नहीं बैठती थी।

हम वहाँ से चले आये। लोग कह रहे थे कि पन्द्रह-बीस वर्षों से ये दोनों इसी प्रकार रहते हैं, बोलते ही नहीं हैं, किसी से माँगते नहीं, नितांत अपरिग्रही, स्वल्प और अयाचित भोजन वह भी एक बार, बस उनकी यही दिनचर्या है। सिगरेट कोई दे दे तो पी लें, एक बार भोजन दे दे तो भोजन कर लें। आप पर खुश हो गये तो बोलते रहे। हमारे लिये यह भी एक विचित्र अनुभव था। जीवन एक विलक्षण प्रयोगशाला है, किसी भी प्रकार का इस पर प्रयोग किया जा सकता है। लाखों-करोडों वर्षों से मनुष्य इस शरीर पर प्रयोग करता आया है। बुद्धि से निर्णय, हृदय से श्रद्धा, चितिशक्ति से अनुभव और शरीर के अंगों से पुरुषार्थ एकसाथ इस शरीर से किया जा सकता है। समूचे जगत् के पदार्थों का शरीर समवाय है। भू एवं गगन की ज्योतियों का संगमस्थल है। काशी से चलकर एक दूसरे महात्मा हमें मिले, वे अपने गुरु का जीवन-वर्णन सुना रहे थे :—

"मेरे गुरु महाराज पटियाला के वंशज थे। राज्यघराने के क्लेश से क्लान्त होकर घर से अलग हो गये, उदासीनता ने उन्हें प्रभु-प्रेम में पगा दिया, वे संन्यासी बन गये। सन् १९५८ में उनका स्वर्गवास हुआ। १८५ वर्ष की उनकी आयु थी। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में परशुराम कुण्ड आसाम में वे दर्शनार्थ गये थे। कुण्ड के समीपवर्ती साधु ने कहा कि महाराज कैसे आये, तो उत्तर में उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में एकमात्र आशा दर्शनपूर्ति का जिक्र किया। साधु से नहीं रहा गया। साधु ने कहा—महाराज, वृद्धावस्था में क्यों भय करते हो ! छह मास मेरी औषधि लीजिये। केवल एक ही कायाकल्प का चमत्कार देखिये। महाराज, पार्वतीय गुफा में छह मास तक औषधोपचार करते रहे। उसी का प्रतिफल था कि उनकी समूची देह जराजीर्ण अवस्था से निकलकर यौवन में परिवर्तित हो गई। ८०-८५ वर्ष का वृद्ध १८ वर्ष का जवान बन गया। चमड़ी बदल गई, दाँत नये आ गये, काले केश मण्डराने लग पड़े, जीवन

में वसन्त छा गया। जीवन शक्ति की घटा घहराने लगी। इसी प्रकार दो-तीन बार उन्होंने जीवन में कायाकल्प का प्रयोग किया, आजीवन उनकी जवानों-सी चमक और कुन्दन-सी दमक उनके चेहरे पर चमकती रही। १८५ वर्ष की उमर में एक दिन उन्होंने कहा कि भाई अब हमारी याद मत करना, बस चादर ओढ़ते ही वे विदा हो गये। मैं अब अकेला रह गया हूँ। मैं भी अन्न नहीं खाता हूँ। केवल एक सेर गोदुग्ध पान करता हूँ और ब्रह्मरसायन अथवा ज्योतिष्मती रसायन का सेवन करता हूँ। निद्रा मुझे आती नहीं। मैं सारा दिन घूमता हूँ तो थकता नहीं, प्राणायाम भी करता हूँ, अन्तर्नाद एवं अन्तः प्रकाश का मुझे दर्शन होता रहता है। मैं चाहता हूँ कि संसार गुरुदेव की प्रसादी का लाभ उठाये। याद रखिये, यह रसायन केवल ब्रह्मचारी प्रभु के भक्तों के ही काम की है, विषय-वासना के भूले लोगों के लिये उसमें कुछ भी नहीं है।"

फरीदाबाद का मन्दिर-धर्मशाला वाला वह बाबा भी विचित्र था, जहाँ हम एक रात और दो दिन ठहरे। वह केवल भंग पीता था, एक बार दो बार, किन्तु आसन का इतना पक्का था कि शीत, ताप, आँधी-वर्षा सभी ऋतुओं में अपना आसन एक ही वृक्ष के नीचे जमाये रखता था। उसके जीवन का क्या लक्ष्य था यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु जनता की भलाई पथिकों की सेवा और मन्दिर पूजा की तरफ उसका मन अवश्य था। विद्या व चिंतन का वहाँ प्रवेश नहीं था। आत्मसाक्षात्कार अथवा परमार्थ साधन जैसी भी वहाँ कोई बात नहीं थी। किन्तु जीवन बड़ा गतिशील था। उद्यम पुरुषार्थ की वह सजीव मूर्ति था, उसके जीवन को देखते ही उस निर्जन शून्य घाटी के फूल की याद आ गई, जो अपनी समूची सौंदर्य-राशि बिखेरता हुआ खिलता है और बिना किसी की प्रशंसा पाए अनंत धूल में विलय हो जाता है।

हम अब दिल्ली की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं और काली कोठरी की काजल की तरह धूँआ फुफकारती हुई मिलों को देख रहे हैं, यह सामने ओखला है, यह दिल्ली की यांत्रिक बस्ती है।

[अगले अंक में दिल्ली का वर्णन]

दिल्ली

यह दिल्ली है !

'यंत्रोद्योग ने मनुष्य की तस्वीर बदल दी है।' पूंजी और उसका विनियोजन 'यंत्र' को केन्द्र में रख कर घूम रहा है। मनुष्य यंत्र चलाते-चलाते स्वयं यंत्र बन कर रह गया है। निर्जीव यंत्र और सजीव यंत्र के सिवाय ससार में अब कुछ नहीं रहा। खैर यहां तक भी संतुलन था, 'जड़' और 'चेतन' दोनों यंत्र तो थे ही किन्तु अब तो मशीन मालकिन बन गई है और मनुष्य मुनीम। आगे देखें कहां तक मनुष्य का ह्रास होता है ?

दिल्ली की 'ओखला' एक यांत्रिक बस्ती है। दिल्ली भारत का कोई

औद्योगिक प्रतिष्ठान तो नहीं है। यह तो राजनीति का घरौंदा मात्र है। कितने ही जुगनू कुटिल अंधियारी में टिम-टिमाते हैं और कितने चमगादड़ दिन के उजाले से डर कर अपने प्राणो की रक्षा करने में प्रयत्नशील रहते हैं। चाणक्यपुरी का भी विचित्र खेल है, परन्तु यह धौली धूप की तरह निश्चित है कि दिल्ली भारत की भाग्य-विधात्री है। जीवन और जगत् की समस्त तंत्री को दिल्ली स्पंदित करती है। पिछले १५ वर्षों से दिल्ली देश की ब्रह्मनाड़ी बन गई है। मन, प्राण एवं बुद्धि को; नीनि, उद्योग तथा शासन को दिल्ली ही संचालित करती है।

सभी राजनतिक सम्प्रदायों का भी दिल्ली मठ बन गया है। कांग्रेस, जनसंघ एवं कम्युनिस्ट धाराओं का त्रिवेणी-संगम पार्लियामेन्ट एवं इन्डिया गेट के चारों ओर प्रवाहित होता है। चीन को छोड कर संसार की सब से बडी वाग्बन्दूकों की सभा दिल्ली में जमती है। विचित्रता इस बात की है कि दिल्ली प्रारम्भ से समन्वय का प्रतीक रही है, सामंजस्य बैठाना उसका सर्व प्रथम काम रहा है। आज भी राजनीनि के साथ धर्मों का दिल्ली अपूर्व संगम स्थल है।

जैनियों की दादावाड़ी, बौद्धों का अशोकविहार, वैदिकों का जमुना घाट, मुसलमानों का निजामी व जामह मस्जिद, ईसाइयों के चर्च, पारसियों का अंग्यारी, सिक्खों का शीशगंज-गुरुद्वारा आर्य समाज का दीवान हाल, बहाई लोगों का विश्वधर्म मन्दिर, बिड़ला जी का लक्ष्मीनारायण मंदिर आदि धार्मिक स्थान दिल्ली की अपनी अपूर्व विलक्षणना हैं।

भारत भर के धर्मों, सम्प्रदायों, संस्थाओं तथा संठनों के यहां केन्द्र हैं। हार और जीत के खेल दिल्ली के चारों ओर युगों मे होते रहे हैं। दिल्ली भारत का इतिहास हैं। जाटों, मराठों, राजपूतों एव यवनो के उत्थान-पतन का इतिवृत्त दिल्ली ने बनाया है। मुगलों के शासन के बाद से तो दिल्ली में पूरा भारत ही समा गया है।

वैसे तो दिल्ली ने जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति की है, किन्तु अभी हमारे सामने दिल्ली की छोटी यांत्रिक बस्ती ओखला है। इसे कालकाजी भी कहते हैं। मोदी मिलस के सामने शिव मन्दिर है। यह ठीक पर्वत की

उपत्यका में बसा हुआ है। यह वही पर्वत है जहां से सूरजमल जाट ने (भरतपुर के महाराज) लालकिले पर तोपों से गोले बरसाने शुरू किये थे। उस समय भरतपुर के जाटों ने सिकन्दरा खंडित कर दिया था। ताजमहल में भूसा भर दिया था और लाल किले पर भी तोप दाग दी थी। अब इस पर्वत की चोटी पर एक छोटी सी बौद्ध-कुटी बना दी गयी है। लाजपत नगर, फ्रेंड्स कालोनी, किलोकड़ी, आश्रम, ओखला, भोगल आदि कितनी बस्तियां इस पर्वत के चारों ओर बस गयी हैं और बस रही हैं।

आबादी बढ़ रही है। केवल भारत में हर रोज ११०० नये मुंह खुलते हैं। जीवन की समस्या तृष्णा की तरह बढ़ रही है और सुरसा के क्रूर पेट की तरह फैलकर समस्त जगती को लपेट लेना चाहती है। दिल्ली में भी वही समस्या है।

पिछले १५ वर्षों से दिल्ली की चहल-पहल के केन्द्र नेहरु रहे हैं। राजरानी दिल्ली के सुहाग की बिन्दी नेहरु की चमक से जगमगाती रही है। नई दुलहिन की तरह बड़े-बड़े राष्ट्रों के कर्णधार इसके मुख दर्शन के लिए बेताबी से आते रहे हैं और अपनी ओर से भेंट पूजा भी चढ़ाते रहे हैं. किन्तु यह दिल्ली है बडी हठीली, न किसी की तरफ झुकी और न ही किसी से रूठी। सब ओर उसने देखा। अनेकों ने उसे उलझाना चाहा किन्तु कहीं उलझी नहीं। यही उसकी विशेषता रही है। तटस्थता की नीति दिल्ली मे उमगी है। मालूम नहीं संसार के कितने राजनैतिक मैदानों को उसने उपजाऊ बनाया है। आज तो तटस्थ राष्ट्रों की एक नई दुनिया बन गई है। दोनों शिविरों के बीच तटस्थ जगत् एक पुल बन गया है।

हम ठीक ढाई वर्ष के बाद दिल्ली आ रहे हैं। इस बीच ओखला बस्ती से लेकर सुन्दर नगर तक इमारतों की श्रृंखला बद्ध पंक्तियां खडी हो गई हैं। सुन्दर नगर तो विश्वकर्मा की अलकापुरी की तरह एक अनुपम सुन्दर बस्ती है। ओखला से चलकर हमारा पडाव सुन्दर नगर में ही हो रहा है; 'आनन्द ज्योति' भवन में। श्री आनन्दराज जी सुराणा तथा सेठ अचलसिंह जी 'विश्वधर्म सम्मेलन' के प्राणवान् स्तम्भ रहे हैं।

उनकी प्राणवत्ता हमारी योजना को व्यापक बनाने में जीवन डालती रही। राष्ट्र के प्रति दोनों की सेवाएं अमूल्य हैं। भारत माँ के इन दोनों सपूतों ने अपन देश के ऋण को हलका किया है। आज़ादी की दीप-शिखा में तैलदान का काम बहुत ही निःस्वार्थ भाव से किया है।

अवसर की बात थी कि जब मैं सुराणा जी के मकान में पहुंचा तो उसी समय सेठ अचल सिंह जी आ गये। सुराणा जी, सेठ अचल सिंह जी श्री शान्तिभाई वनमाली सेठ आदि सभी कर्मठ सेवकगण जुट गये। दिल्ली में हमारे निकट आने वालों में से यह एक ऐसी मण्डली है जो भविष्य निर्माण की योजना बनाने में ही तल्लीन रही है। सुराणा जी तो साक्षात् कर्मठता की सजीव मूर्ति हैं, उनमें कर्म एवं पुरुषार्थ मूर्तिमान् हो गया है, रूप चाहे कितना ही उग्र बन जाता हो किन्तु उनके अन्तराल में भगवद् भक्ति की अजस्र गंगा सदा तरंगित रहती है। जब ये दोनों महानुभाव 'सामायिक' की धार्मिक प्रवृति करते हुए प्रभु भजन में लीन होते हैं तो इनकी अटूट श्रद्धा नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति के हृदय में भी धर्म के बीज बो देती है।

दिन में कितनी बार चर्चा चली। 'अहिंसा शोधपीठ' तथा 'विश्वधर्म' पत्र ही चर्चा के मुख्य विषय थे। शोधपीठ के सामने अभी भूमि की समस्या है और विश्वधर्म पत्र के सामने तपे-तपाये कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की।

योग

योग को लेकर जगत के विचारकों एवं आध्यात्मिक चिंतकों में एक विशेष प्रकार की रसिकता पैदा हो गई है। आज भारत के पास निर्यात करने योग्य योग से बढ़कर कोई वस्तु न रह गई है। हर चीज के निर्यात में प्रतिद्वन्द्विता का भय हो सकता है, किन्तु योग के क्षेत्र में भारत अकेला है। और योग भी द्रोपदी के चीर की तरह अपने क्षेत्र का प्रसार कर रहा है। बहुत पुरानें युग से योग का अनुसंधान भारत में हो रहा है। समाधि तथा सम्मिलन के अर्थों में योग बहुत घूम चुका।

अब तो वह आसनों, सहज प्रक्रियाओं, चिकित्सा पद्धतियों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व जमा रहा है ! जिधर देखिए उधर योगाश्रम, योग केन्द्र तथा यौगिक चिकित्सालयों की बाढ़ सी आ गई है। भारत के प्रमुख शहरों तथा राजधानियों में ही योग के चमत्कार दिखाए नहीं जाते अपितु संसार के बड़े २ राष्ट्रों में योग के प्रति बहुत गहरी रुचि पैदा की जा रही है और भारत से गए योगियों की वहां धूम मची हुई है ! मेरे दिल्ली आने के बाद जितने विदेशी मुझे मिले उनमें से अधिकांश योग के विषय में जानकारी के लिए बहुत ही उत्सुक एवं बेचैन दिखाई दिये।

उन सभी विदेशी विद्वानों की योग के सम्बन्ध में कई प्रकार से जिज्ञासा प्रगट होती है :

योग के लिए कौन सा ग्रन्थ पढ़ें ?

२. योग के चमत्कार एवं आसन प्रक्रियाएं कहां देखें

३. कुण्डलिनी योग क्या है ?

४. सहज योग किसे कहते हैं ?

५. आत्म साक्षात्कार योग कैसे हो सकता है ?

६ कुम्भक का सही तरीका क्या है ?

७. प्रकाश एवं अन्तर संगीत कैसे सुना जा सकता है ?

८. षट् चक्र क्या है, और उसके बेधन का कौन सा प्रकार है ?

९. राज योग और हठ योग में क्या भेद है ?

१०. मंत्र योग और लय योग किसे कहते हैं ?

योग के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्नों की तालिका इससे और भी लम्बी हो सकती है, किन्तु कहने का यह आशय है कि आज योग को लेकर भारत की अपेक्षा विदेशों में बहुत गहरी छानबीन की जा रही है।

रामकृष्ण मिशन, योगोदा सत्संग सोसाइटी, स्वामी शिवानन्द का दिव्य जीवन योग, रामतीर्थ मिशन आदि कितनी ही संस्थायें संसार के कितने राष्ट्रों में योग का प्रचार बड़े जोरों से कर रही हैं। इनमें से

रामकृष्ण मिशन तथा योगोदा सत्संग सोसाइटी के तो योरुप में सैंकड़ों ही योगाश्रम बने हुए हैं, जहां हजारों विदेशी योग प्रक्रिया साधन में तल्लीन हैं। अकेले योगोदा सत्संग के दो सौ साधू संसार भर में योग का प्रचार कर रहे हैं और वे सब के सब विदेशी हैं। इन सब के केन्द्र में योग है किन्तु योग साधन में जो सुधार उन लोगों ने किये हैं वही सुधार पूर्वक प्रतिष्ठित किया गया योग एक एक स्वतंत्र धर्म बन गया है। भारतवर्ष में और संसार में योग के सैंकड़ों सम्प्रदाय बन गए हैं।

यह तो वेद एवं उपनिषदों को मध्य में रख कर योगों की बात मैं कर रहा हूं। किन्तु जैन धर्म बौद्ध धर्म, ईसाई, सूफी, लाओत्से के ताओ धर्म तथा भारत वर्ष के सन्त मतों की गणना करने लगूं तो आप को आश्चर्य करना होगा कि इन सब धर्मों तथा सम्प्रदायों में योग पर ही सब से अधिक बल दिया गया है किन्तु योग पद्धति में सभी के कुछ न कुछ अन्तर अवश्य हैं। योग के मानने वालों का मुख्य उद्देश्य चाहे किसी एक केन्द्र पर आकर अभिन्न क्यों न हो जाए किन्तु प्रणाली की भिन्नता के कारण एक योग सम्प्रदाय दूसरे योग सम्प्रदाय को परिपूर्ण मानने के लिए तैयार नहीं और न ही आदर देने के लिए रज़ामन्द हैं। हालांकि योग का अर्थ सात्त्विक आनन्द को अभिवृद्ध करना और राग द्वेष को समूलतः नष्ट करना है, फिर भी योग के प्रचारक एक दूसरी योग प्रक्रिया के विरुद्ध तथा योग प्रचारकों के विरुद्ध राजनैतिक दलबन्दियों की तरह पारस्परिक घृणा प्रसारित किया करते हैं! इसका कारण है—योग आध्यात्मिक आनन्द से हट कर व्यापार बनता जा रहा है। दुरुपयोग भी खूब हो रहा है, फिर भी योग का प्रसार बहुत तेज़ी से हो रहा है, निष्काम तथा सच्चे चिंतक और वास्तविक साधक योग के मैदान में उतर रहे हैं। महर्षि रमण तथा महर्षि अरविन्द का विश्व के बौद्धिक व्यक्तियों पर जो प्रभाव पड़ा है उससे योग, महात्माओं एवं संतों से आगे बढ़ कर विद्वानों व दार्शनिकों का भी विचारणीय विषय बन गया है। आज तो जगत के सभी क्षेत्रों और सभी प्रकार के मानवों पर योग का साम्राज्य जम गया है। अहिंसा और योग आधुनिक जगत के न सही,

किन्तु भावी-संसार के सर्वाधिक विचारणीय विषय मान लिए गए हैं ? आने वाला समय बताएगा कि विश्व के घटना चक्र में योग एवं अहिंसा धुरा बन कर विश्व-संचालित करेंगे। क्योंकि अहिंसा मनुष्य को पाशविक भय से ही नहीं, अपितु मनुष्य को मनुष्य के भय से विमुक्ति दिला देगी और योग मनुष्य की प्रकृति पर विजय तथा आध्यात्मिक अन्तर शक्तियों को जागृत कर देगा। किन्तु इस समय जो अहिंसा व योग के प्रसार की होड़ लगाई जा रही है और योग को चमत्कार का घरौंदा तथा अहिंसा को सफेदपोश राजनीति बनाने का जो षड्यन्त्र किया जा रहा है उससे अहिंसा और योग का कोई भला होने वाला नहीं है।

योग तथा अन्न समस्या

मैंने अपने जीवन में योगियों की बहुत खोज की है। उनमें से कुछ योगियों की उक्तियों को उद्धृत करना योग के इस लेख में अनुपयुक्त नहीं रहेगा। एक वायुभक्षी योगी कह रहे थे कि जगत रोटी कपड़े की समस्या कभी सुलझा नहीं सकेगा किन्तु हमने इस भयंकर समस्या का समाधान निकाला है वायुभक्षण ! १२ वर्ष की साधना से इतनी सिद्धि हमें प्राप्त हो गई है कि पेट में वायु भर कर वायु को पचाना और उसमें से ही अन्न व जल की आवश्यकता को पूरा कर लेना हम वर्षों से इसी प्रकार करते हैं। केवल शुद्ध वायुपान करते हैं, बस उसके बाद फिर रोटी व जलपान करने की

इच्छा ही नहीं होती और न ही कोई निर्बलता अनुभव होती है। अगर जगत के लोग इस साधना को सीख लें तो उन्हें अपनी समूची जिंदगी में अन्न व जल की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

दूसरे योगी मुझे कह रहे थे कि जैसलमेर व बीकानेर के इलाके में जहाँ जल उपलब्ध नहीं है वहाँ पर हजारों मृग अपने २ झुण्ड बना कर चौंकड़ियें भरते हैं। बताइए वह उस पानी के बिना कैसे गुजारा करते हैं, जबकि वहां दो सौ हाथ से लेकर सात सौ हाथ तक कुओं का गहरा पानी है, वहां के लोगों को पानी मिलना मुश्किल है, तो उन हजारो मृगों को कैसे जल उपलब्ध है ?

मैंने जब इसका कारण पूछा तो कहने लगे कि इन मृगों को शीतली-प्राणायाम करना आता है ! शीतली-प्राणायाम द्वारा संचित की गई वायु में से ही अन्न एवं जल आकर्षित कर लेते हैं और उससे क्षुधा तथा तृषा की तृप्ति हो जाती है ! प्राचीनकाल से योगीजन विकट जंगलों एवं गुफाओं में निवास करते थे। भिक्षा की पूर्ति वे केवल वायु भक्षण द्वारा ही करते थे। ऐसें तो संसार के सभी प्राणियों में कोई न कोई यौगिक प्रक्रिया होती है। उसके सम्बन्ध में हम विस्तार से फिर कभी लिखेंगे, पाठक प्रतीक्षा करें।

ज्योतिष तथा अष्टग्रह

आज के इस वैज्ञानिक युग में भी ज्योतिषियों के प्रति विश्व में, विशेषकर भारत में काफ़ी आदर है। विज्ञान ने बुद्धि और तर्क को जहां जागृत किया है, वहां पुरातन विद्याओं एवं अनुसंधानों को तथा भविष्य जानने वाली पद्धतियों को भी पुनर्जीवित कर लिया है। आज ज्योतिष, वैज्ञानिक रीति से विकसित हो रहा है। नए से नए अनुसंधान किये जा रहे हैं। भूगोल एवं खगोल के रहस्यात्मक प्रश्नों को सुलझाने के लिए नई से नई विधियें निकाली जा रही हैं। बहुत सी वेध-शालाओं, नक्षत्र-

शालाओं एवं आकाशीय ज्योतिष्पिंडों का आश्चर्यजनक ढंग से अध्ययन किया जा रहा है। आज ज्योतिष कुछ मुट्ठीभर ज्योतिषियों के हाथ का खिलौना न होकर विश्व व्यापी अध्ययन का विषय बनता जा रहा है! आज के ज़माने में पोथी पंडितों एवं पंचांग के ज्योतिर्विदों की बात पर बौद्धिक जनता में कोई विश्वास नहीं रह गया है। ज्योतिष स्वयं एक विद्या है, अंध-श्रद्धा नहीं है। समूचा जगत आकाश ज्योतिष्पिंडों से आबद्ध और नियन्त्रित है। समूची सृष्टि पर आकाशीय ग्रह अपने अपने ढंग से विभिन्न प्रकार का प्रभाव डालते हैं। समुद्र का ज्वार-भाटा जल राशि की ही अकुलाहट नहीं हैं, अपितु जल का स्वामी चन्द्रमा ही उसे शांत एवं क्षुब्ध बनाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। यही कारण है कि चन्द्रमा की कलाओं के आधार पर समुद्र का उतार-चढ़ाव होता रहता है। इस तथ्य और विज्ञान को जिसने समझा है, उसने ही ज्योतिष की सबसे बड़ी सेवा की है।

हमारे देश में भी ऐसे महान् ज्योतिषियों की कमी नहीं हैं, जिन्होंने ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में आए हुए पोंगापंथी सिद्धांतों को निकाल कर बुद्धि-संगत आधारों की स्थापना की है। पं० सूर्यनारायण जी व्यास भी उन्हीं ज्योतिषियों मेंसे एक हैं। उनका ज्योतर्विज्ञान तथ्य और तर्क पर आधारित है। राजनीति, धर्म एवं समाज के सभी प्रश्नों को उन्होंने बड़ी गहराई से सुलझाने का प्रयत्न किया है और ज्योतिष को पैसा बनाने की मशीन न बनाकर, राष्ट्र एवं जनता के लाभ का विषय बनाया है। मेरा उनसे पुराना परिचय है। बहुत वर्षों के बाद दिल्ली में एक बार फिर मिलन हुआ। अष्टग्रही को लेकर हम दोनों में बहुत देर तक विचार-विमर्श चलता रहा। राष्ट्रपति-भवन में जब उन्होंने मुझे बुलाया तो वहां भी हमारी आपस में, आज के ज्योतिषियों के द्वारा फैलाए गए फरवरी में अष्टग्रही के नाम पर विभ्रम के सम्बन्ध में बातचीत हुई।

राष्ट्रपति के निजी सचिव श्री विश्वनाथ वर्मा एवं श्रीमति ज्ञानवति दरबार भी वहां मौजूद थीं जबकि मैंने पंडितजी से उपहास करते हुए कहा कि, पंडित जी यह अष्टग्रह का असर केवल पैसे वाले सेठों पर ही पड़ने

वाला है। ज्योतिषी और ब्राह्मणों के लिए तो अष्टग्रह चांदी बन गया है। सचमुच अष्टग्रह का ज़रा भी डर किसी ज्योतिषी या ब्राह्मण पर पड़ा होता तो वह भी पांच पैसे का दान करता। दान न कर लगातार दान के लिए सारी जनता को अष्टग्रह का डर दिखा कर, उकसा रहा है। तो क्या अष्टग्रह सिर्फ सेंठों पर ही पड़ने वाला है या इसका कोई दूसरा भी कुछ फल है ? आपके ख्याल में क्या सचाई है इस सम्बन्ध में ? पंडित जी हंसते हुए बोले कि—मुनि जी, अष्टग्रह से मुद्रा-विनिमय बढ गया है। यह तो प्रसन्नता की ही बात है। बिना भय के प्रीति नहीं होती। पैसे वाले कुछ लोभ का त्याग कर रहे हैं, जो अच्छा ही है। वैसे अष्टग्रह के नाम पर दोनों प्रकार की जो भविष्यवाणियां की गई हैं, वे अपनी-अपनी पराकाष्ठा को लेकर की गई हैं।

एक तरफ से आवाज़ आ रही है कि विश्व में प्रलय हो जाएगी, और दूसरी तरफ कहा जा रहा है कि—अष्टग्रहोंसे कुछ होने वाला नहीं है। ये दोनों ही भविष्यवाणियां गलत हैं। आठों ग्रहों का मकर राशि में एकत्रित होना, संसार के विनाश एवं निर्माण का, सर्जन और संहार का उभयात्मक रूप से प्रतिफल देना है।

बंगाल से लेकर योरुप तक तथा मुस्लिम राष्ट्रों में, आठों ग्रहों का प्रभाव एक अलग ढंग से पड़ने वाला है, और उसमें कहीं भी प्राकृतिक प्रकोप, शीत लहर एवं महामारी का उदय हो सकता है। इसके साथ-साथ विश्व के शेष भूभागों में नव निर्माण का भी एक नया उपक्रम हो—यह भी संभव है।

१९६२

भारत के लिए सन् १९६२ कुछ नए प्रकार के संदेश लाया है। पंडित नेहरू की मकर राशी में आठों ग्रहों का, यह सम्मिश्रित फल, भारत का

मिलने वाला है। ऐसे कितने ही आगामि दिन, भाग्योत्कर्ष के आ रहे हैं। गोआ-विजय, हाकी क्रिकेट विजय, ये सब आपके सामने हैं। जिन लोगों ने अष्टग्रहों के नाम पर विश्व विनाश की कल्पना की है, वे भारी भूल में हैं। न प्रलय ही होगी और न ही विनाश ! हां, कहीं भी प्रकृति जन्य प्रकोप संहार का एक नया उत्पात कर दे, यह संभव है। और ठीक-ठीक तरीके से अष्टग्रह का पूरा फलादेश निकालना, इसलिये भी संभव नहीं है क्योंकि यह ज्योतिष शास्त्र में आकाशीय ग्रहों की एक आश्चर्य-घटना के रूप में सभा होन जा रही है। इसमें सूरज, शनि, केतु, मंगल तथा बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा चन्द्रमा परस्पर में कुछ इस प्रकार बैठ गए हैं कि अच्छाई और बुराई, शुभ और अशुभ आपस में सम्मिलित हो गए। ऐसी घटनाएं और इतने अधिक ग्रहों का मिलन, पिछले हजारों वर्षों में महाभारत के काल के सिवाय कभी हुआ हो—ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु यह निश्चित है कि इससे डरने की आवश्यकता नहीं है। भारत में ज्योतिषियों का एवं ब्राह्मणों का ध्यान, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड पर ही जाता है। अच्छा हो एक ज्योतिर्विज्ञान के लिए अलग से एक विश्व विद्यालय की स्थापना करने की ओर हम सब सोचें किन्तु हमने इस सारे ज्योतिष चक्र को अपने-अपने अर्थोपार्जन का यंत्र बना रखा है—यह दुःख का विषय है।

राष्ट्रपति जी

राष्ट्रपति भवन में पंडित जी से मिलने के लिए जब मैं गया तो उससे पहले ही उन्होंने राष्ट्रपति जी को मेरे आने की लिखित सूचना भेज दी थी। और उसका राष्ट्रपति जी की ओर से मिलने का लिखित निमंत्रण भी पंडित जी के पास आया हुआ था। इसीलिए पंडित जी के कहने से मैं राष्ट्रपति जी से मिलने गया। राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद एक साधु व्यक्ति हैं। उनकी सज्जनता एवं धर्मश्रद्धा अपने आप में अनोखी है। मेरे साथ उनका धर्म को लेकर अनेकों बार विचार विमर्श हुआ है। मैंने

पाया कि महाराजा जनक के आदर्श को अपने जीवन में उन्होंनें साक किया है। यह देश की तपस्या का फल है कि उसे ऐसा तपोनिष्ठ एव कर्मयोगी राष्ट्रपति प्राप्त हुआ।

यद्यपि निर्बल स्वास्थ्य के कारण अब वे अधिक कार्यभार को संभाल सकने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। फिर भी उन्होंने पिछले वर्षों में देश के सामने धर्म और कर्म की मशाल जलाए रखने में भगीरथ प्रयास किया है। उनका ख्याल है कि जब तक व्यक्ति धर्मनिष्ठ न होगा, तब तक उसकी ईमानदारी वाग्-व्यापार के सिवाय और कुछ नहीं होगा।

अन्तर से जिस प्रकार का कलुश आज भर रहा है, उसका कारण भी धर्मान्धता या धर्म उदासीनता है। विवेकपूर्वक धर्म तत्त्व के प्रति आकृष्ट होना, जीवन की सफलता का सूत्र है। संभव है यह विरासत उन्हें भगवान महावीर से प्राप्त हुई है, क्योंकि राष्ट्रपति का जन्म भी भगवान महावीर के जन्म स्थान वैशाली के ही पास हुआ है। जैनधर्म के प्रति भी उनके मन में एक साहजिक आकर्षण बना रहता है। वे श्रद्धा से वैष्णव हैं, किन्तु धर्म सहिष्णुता पर उनका बड़ा विश्वास है। विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर उनके इन विश्वासों को हमने बड़ा मजबूत पाया है। हमारे देश में धार्मिक लोग आपस में जिस तरह विषवमन करते हैं, उससे राष्ट्रपति जी को बड़ा दुख और खेद पहुंचता है। विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर सैंकड़ों लोगों ने उन्हें धर्म सम्मेलन और मेरे विरुद्ध पत्र लिखे, मेरे खिलाफ कितने ही डैपुटेशन मिले, हमारे नज़दीक के साथी, जो विश्वधर्म सम्मेलन की सफलता को सहन नहीं कर सकते थे, उन्होंने भी इस योजना को कमज़ोर करने में खूब प्रयत्न किया। लेकिन राष्ट्रपति जी, कहीं भी टस से मस नहीं हुए। मुझे याद है, एक दिन उन्होंने कहा था कि मन्दिर चाहे वैश्या का ही क्यों न बनाया हुआ हो, उसमें पूजा करने वाले को भगवान से पुण्य ही प्राप्त होता है। वैश्या के पापों में से कुछ हिस्सा नहीं मिलता। इस लिए व्यक्ति कैसा भी हो, यह हमे नहीं सोचना है। धर्म का काम है, इसमें हमें मिलकर काम करना चाहिए। नकेमि लाने के प्रयत्नों ने बहुत बड़ा काम किया भी। राष्ट्रपति जी

केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, अपितु एक धर्म-विशेषज्ञ की तरह धर्म प्रभावक भी हैं। वे चाहते हैं कि मेरे राष्ट्र में लोग, धर्म के तत्व को समझें और धर्म विरोधी कार्यों से बचें।

साम्प्रदायिकता और धर्म, दोनों विभिन्न वस्तुएं हैं। राष्ट्रपति जी सम्प्रदायिकता के उतने ही विरुद्ध हैं, जितने पं० नेहरु। लेकिन धर्म के उतने ही समर्थक हैं, जितने पं० नेहरु समाजवादी समाज रचना के पक्षपाती। राष्ट्रपति जी का निजी–विचार समाजवादी-रचना के विरुद्ध नहीं किन्तु धर्महीन समाज-रचना हम सब के लिए वरदान नहीं, अपितु अभिशाप सिद्ध होगी। जहां लोग भौतिक उत्कर्ष के सिवाय जन्म-मरण की परम्परा आत्म-अनात्म की चर्चाओं, प्रकृति-पुरुष के अज्ञात रहस्यों से अलग होकर केवल वर्तमान की समस्याओं में ही अपने जीवन की इतिश्री मान लेते हैं, उनमे राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परम्परा को, इसके द्वारा जीवन और जगत के उदात्त नियम से चालित हो रहे हैं, कोई लाभ नहीं हो सकता।

आज जो मुस्लिम देशों में राजनैतिक उथल-पुथल होती रहती है, या राज्य-प्राप्ति के लिए बाप और बेटों में, स्वामी और सेवकमें कोहराम मच जाता है, वहां भारतकी आर्य-जनता में ठीक दूसरे ही प्रकारका वातावरण देखा जाता है। इसका कारण हमारा विभिन्न प्रकार का दर्शन ही कारण है। मरने के बाद प्रलय तक कब्र में पड़े रहना, जरूर चिन्ता एवं विपल्व का कारण बन सकता है किन्तु जिस आत्म-दर्शन में यहां से छूटते ही एक नया जन्म मिल जाने वाला है, और जहां जन्म और मृत्यु की परम्परा को समाप्त कर, सर्वोच्च आत्मसिद्धि को प्राप्त करना ही ध्येय रखा गया है, वहां ये छोटे-छोटे तुच्छ स्वार्थं हमारे आड़े नहीं आ सकते।

भारत को अगर जीना है तो अपनी सांस्कृतिक परम्परा को तथा दार्शनिक पृष्ट-भूमि को भुलाकर के नहीं, क्योंकि दर्शन और संस्कृति को भूल जाना, जीते जी विनष्ट हो जाने के समान है।

यह दिल्ली है !

'यंत्रोद्योग ने मनुष्य की तस्वीर बदल दी है ।' पूँजी और उसका विनियोजन 'यंत्र' को केन्द्र में रख कर घूम रहा है। मनुष्य यंत्र चलाते-चलाते स्वयं यंत्र बन कर रह गया है। निर्जीव यंत्र और सजीव यंत्र के सिवाय संसार में अब कुछ नहीं रहा । खैर यहाँ तक भी संतुलन था, 'जड़' और 'चेतन' दोनों यंत्र तो थे ही किन्तु अब तो मशीन मालकिन बन गई है और मनुष्य मुनीम ! आगे देखें कहाँ तक मनुष्य का ह्रास होता है ?

दिल्ली की 'ओखला' एक यांत्रिक बस्ती है। दिल्ली भारत का कोई औद्योगिक प्रतिष्ठान तो नहीं है । यह तो राजनीति का घरौंदा मात्र है। कितने ही जूगनूं कुटिल अंधियारी में टिमटिमाते हैं और कितने चमगादड़ दिन के उजाले से डर कर अपने प्राणों की रक्षा करने में प्रयत्नशील रहते हैं। चाणक्यपुरी का भी विचित्र खेल है, परन्तु यह धौली धूप की तरह निश्चित है कि दिल्ली भारत की भाग्य-विधात्री है । जीवन और जगत् की समस्त तंत्री को दिल्ली स्पंदित करती है। पिछले १५ वर्षों से दिल्ली देश की ब्रह्मनाड़ी बन गई है, मन, प्राण एवं बुद्धि को, नीति, उद्योग तथा शासन को दिल्ली ही संचालित करती है।

सभी राजनीतिक सम्प्रदायों का भी दिल्ली मठ बनं गया है। कांग्रेस, जनसंघ एवं कम्युनिस्ट धाराओं का त्रिवेणी संगम पार्लियामेन्ट एवं इंडिया गेट के चारों ओर प्रवाहित होता है। चीन को छोड़ कर संसार की सबसे बड़ी वाग्बन्दूकों की सभा दिल्ली में जमती है। विचित्रता इस बात की है कि दिल्ली प्रारम्भ से समन्वय का प्रतीक रही है, सामंजस्य बैठाना उसका सर्व प्रथम काम रहा है, आज भी राजनीति के साथ धर्मों का दिल्ली अपूर्व संगम स्थल है।

जैनियों की दादावाड़ी, बौद्धों का अशोकविहार, वैदिकों का जमुना घाट, मुसलमानों का निजामी व जामहमस्जिद, ईसाइयों के चर्च, पारसियों का अंग्यारी, सिक्खों का शीशगंज-गुरुद्वारा आर्य समाज का दीवान हाल, बहाई लोगों का विश्वधर्म मंदिर, बिड़ला जी का लक्ष्मीनारायण मंदिर आदि धार्मिक स्थान दिल्ली की अपनी अपूर्व विलक्षणता हैं।

भारत भर के धर्मों, सम्प्रदायों, संस्थाओं तथा संठनों के यहाँ केन्द्र हैं। हार और जीत के खेल दिल्ली के चारों ओर युगों से होते रहे हैं। दिल्ली भारत का इतिहास है। जाटों, मराठों राजपूतों एवं यवनों के उत्थान-पतन का इतिवृत्त दिल्ली ने बनाया है। मुगलों के शासन के बाद से तो दिल्ली में पूरा भारत ही समा गया है। वैसे तो दिल्ली ने जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति की है, किन्तु अभी हमारे सामने दिल्ली की छोटी यांत्रिक बस्ती ओखला है। इसे कालका जी भी कहते हैं। मोदी मिल्स के सामने शिव मंदिर है। यह ठीक पर्वत की उपत्यका में बसा हुआ है। यह वही पर्वत है जहाँ से सूरजमल जाट ने (भरतपुर के महाराज) लालकिले पर तोपों से गोले बरसाने शुरू किये थे। उस समय भरतपुर के जाटों ने सिकन्दरा खंडित कर दिया था। ताजमहल में भूसा भर दिया था और लाल किले पर भी तोप दाग दी थी। अब इस पर्वत की चोटी पर एक छोटी सी बौद्ध-कुटी बना दी गयी है। लाजपत नगर, फ्रेंड्स कालोनी, किलोकड़ी, आश्रम, ओखला, भोगल आदि कितनी बस्तियाँ इस पर्वत के चारों ओर बस गयी हैं और बस रही हैं।

आबादी बढ़ रही है, केवल भारत में हर रोज ११०० नये मुँह खुलते हैं। जीवन की समस्या तृष्णा की तरह बढ़ रही है और सुरसा के क्रूर पेट की तरह फैलकर समस्त जगती को लपेट लेना चाहती है। दिल्ली में भी वही समस्या है।

पिछले १५ वर्षों से दिल्ली की चहल-पहल के केन्द्र नेहरू रहे हैं। राजरानी दिल्ली के सुहाग की बिन्दी नेहरू की चमक से जगमगाती रही है। नई दुलहिन की तरह बड़े-बड़े राष्ट्रों के कर्णधार इसके मुख दर्शन के लिए बेताबी से आते रहे हैं और अपनी ओर से भेंट पूजा भी चढ़ाते रहे हैं, किन्तु यह दिल्ली है बड़ी हठीली, न किसी की तरह झुकी और न ही किसी से रूठी। सब ओर उसने देखा। अनेकों ने उसे उलझाना चाहा किन्तु कहीं उलझी नहीं। यही उसकी विशेषता रही है। तटस्थता की नीति दिल्ली से उमगी है। मालूम नहीं संसार के कितने राजनैतिक मैदानों को उसने उपजाऊ बनाया है। आज तो तटस्थ राष्ट्रों की एक नई दुनिया बन गई है। दोनों शिविरों के बीच तटस्थ जगत्, एक पुल बन गया है।

हम ठीक ढाई वर्ष के बाद दिल्ली आ रहे हैं। इस बीच ओखला बस्ती से लेकर सुन्दर नगर तक इमारतों की एक श्रृंखला बद्ध पंक्तियाँ खड़ी हो गई हैं। सुन्दर नगर तो विश्वकर्मा की अलकापुरी की तरह एक अनुपम सुन्दर बस्ती है। ओखला से चलकर हमारा पड़ाव सुन्दर नगर में ही हो रहा है, 'आनन्द ज्योति' भवन में। श्री आनन्दराजजी सुराणा तथा सेठ अचलसिंह जी 'विश्वधर्म सम्मेलन' के प्राणवान् स्तम्भ रहे हैं। उनकी प्राणवत्ता हमारी योजना को व्यापक बनाने में जीवन डालती रही। राष्ट्र के प्रति दोनों की सेवाएँ अमूल्य हैं। भारत माँ के इन दोनों सपूतों ने अपने देश के ऋण को हलका किया है। आजादी की दीप-शिखा में तैलदान का काम बहुत ही निःस्वार्थ भाव से किया है।

अवसर की बात थी कि जब मैं सुराणा जी के मकान में पहुँचा तो उसी समय सेठ अचलसिंह जी आ गये। सुराणा जी, सेठ अचलसिंह जी, श्री शान्तिभाई वनमाली सेठ आदि सभी कर्मठ सेवकगण जुट गये। दिल्ली में हमारे निकट आने वालों में से यह एक ऐसी मण्डली है जो भविष्य निर्माण की योजना बनाने में ही तल्लीन रही है। सुराणा जी तो साक्षात् कर्मठता की सजीव मूर्ति हैं, उनमें कर्म एवं पुरुषार्थ मूर्तिमान् हो गया है, रूप चाहे कितना ही उग्र बन जाता हो किन्तु उनके अन्तराल में भगवद् भक्ति की अजस्र गंगा सदा तरंगित रहती है, जब ये दोनों महानुभाव 'सामायिक' की धार्मिक प्रवृत्ति करते हुए प्रभु भजन में लीन होते हैं तो इनकी अटूट श्रद्धा नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति के हृदय में भी धर्म के बीज बो देती है।

दिन में कितनी बार चर्चा चली। 'अहिंसा शोधपीठ' तथा 'विश्वधर्म' पत्र ही चर्चा के मुख्य विषय थे। शोधपीठ के सामने अभी भूमि की समस्या है और विश्वधर्म पत्र के सामने तपे-तपाये कर्मठ कार्यकर्ताओं की।

अद्भुत योगी से भेंट

"योग की साधना में तल्लीन हूं स्वामी जी, महावीर जी की याद आती है तो भूख भाग जाती है, बुद्ध की याद आती है तो संकल्प बलवान हो जाता है, मैं अन्तर्मन से वार्तालाप करता हूं, मानसिक संवाद प्रेषण रूप विद्या को मैंने प्राप्त किया है। मैं जब चाहूं किसी से भी बातचीत कर सकता हूं फिर वह व्यक्ति चाहे क्यों न अमेरिका में रहता हो।"

ये शब्द एक भारतीय योगी ने मुझ कहे। बहुत ही आकर्षक एवं मधुर व्यक्तित्व के धनी थे, हाथ में उनके राजपूती तलवार लटक रही थी, गौरवर्ण, शुकनाशा, विशाल—भाल, तेजस्वी मुख, चमकती आंखें, अभिनेताओं जैसी अदा, मुगलकालीन उर्दू नुमा भाषा, सब मिल-मिलाकर एक आश्चर्यभरा वातावरण उत्सृष्ट कर रहे थे। लगता था जैसे ३० वर्ष के उस योगी में जवानी नाच रही है, भाषा, नाद की तरह लय बांध रही है और उसकी प्रत्येक अदा जैसे ताल दे रही है। उसकी वाणी में स्त्री जैसी कोमलता और घण्टा-रव की तरह गुंजन निकलती थी। मैं लगातार उसकी ओर एक टक देखता रहा जैसे वह मुझे आकर्षित कर रहा हो, मैं हठात् उसकी ओर खिंचा चला जा रहा था, संभव है उसने त्राटक की साधना की हो या दृष्टि बंधन में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली हो किन्तु यह निश्चित है कि उसकी कहीं-कहीं अनुभवहीनता, बाल सुलभ भोलापन और जवानी के खुमार से भाराक्रांत योग की अपरिपक्व दशा मुझे जानते हुए भी खलती नहीं थी।

मैंने उससे पूछा कुण्डलिनी जागरण किया है क्या?

मुस्कान की फुलझड़ी-सी बिखेरते हुए उसने उत्तर दिया स्वामी जी, अभी से क्या सब रहस्य खोलने का अधिकार थोड़े ही मिल गया है मुझे, कहिये आप भी तो खूब जानते

हैं कि जब तक प्राणों के स्पन्दन शान्त करने नहीं आ जाते और हृदय की धड़कनें स्तब्ध नहीं की जा सकतीं, शरीर का समूचा यन्त्र चलने से रोक नहीं दिया जाता तब तक निर्विकल्प अवस्था का कभी भी अनुभव नहीं हो सकता है। अन्न बन्द करना पड़ता है, तभी ध्यानावस्था अन्तर्मुखी बनती है, फिर प्राण स्वयं अपान में लय हो जाते हैं तभी तो प्राणापान दोनों मिलकर सुषुम्णा के सूक्ष्मतम तन्तु में घुसकर कुण्डलिनी जागरण की भूमिका बनाते हैं।

स्वामी जी, इस अनुभव बोध्य स्थिति को वाचा प्रकट नहीं कर सकती मैंने देखा है कि जो अन्तर शरीर की शुद्धि नहीं करते हैं, अनुलोम और विलोम प्राणायाम के द्वारा नाड़ी शोधन करना नहीं जानते हैं वे कुण्डलिनी के प्रथम जागरण की स्थिति में रुग्ण हो

> संसार के इस समस्त-भूत जगत में मनुष्य एक श्रेष्ठ शक्ति है। वह विचारों का एक यन्त्र है और विचार उसके प्रेरक हैं। उस पर विचारों का ही शासन चलता है। उसके विचारों की उत्तेजना एवं प्रतिहिंसा ही जगत में प्रतिशोध एवं विनाश का दृश्य उपस्थित करती है और विचारों के बदलते ही समूचा जगत् बदल जाता है।
>
> मुनि सुशील

जाते हैं, अथवा जिनके शील संयम की कमी रहती है, आचारहीनता जिन्हें सताती है वे—कुण्डलिनी के उत्थान की प्रारंभिक दशा में इतने भ्रष्ट हो जाते हैं कि वे भयंकर कामुक हो जाते हैं।

मैं उसकी तरफ देखता भी रहा और सुनता भी रहा, उसकी वाणी और उसके अभिनय में विचित्र माधुर्य था। मैंने पाया कि कुण्डलिनी के सम्बन्ध में उसे कुछ जानकारी तो अवश्य है। यद्यपि ये हमारी पहली वार्तालाप थी अतः किसी एक विषय की गहराई में पैठ कर हम लोगों ने मोती नहीं निकाले, बस केवल एक दूसरे को भांपने में ही सारा समय लगा दिया।

बात बदलते हुए मैंने पूछा कि मानसिक संवाद प्रेपण विद्या कैसे साधन की आपने ?

लज्जा और संकोच की गुलाबी रेखाओं के बीच थर्मामीटर के पारे की तरह थिरकते हुए योगी ने कहा—एकाग्रता और सत्यकाम संकल्प मानसिक विचारों को ध्वनि का रूप देते हैं, वही ध्वनि विद्युत तरंगों में प्रवाहित होकर उसी ओर बहने लग जाती है जिस ओर योगी उसे संचालित करना चाहता है। मानव, प्रकृति की सर्वोत्तम कृति है, शरीर में मन एक जगह होता है, खण्ड मन सर्वत्र फैले हुए रहते हैं, अन्तर्मन प्राणों के साथ जहां-जहां दौड़ता है, वहां-वहां चेतना घूमती है। आप तो संवाद प्रेषण की बात करते हैं हम लोग परकाय प्रवेश की सिद्धि में लगे हैं।

हमें एक योगी ने अपने शरीर से प्राण निकालकर एक मृत कीटक शरीर में प्रवेश करके दिखाया था, परन्तु जब उसके प्राण पुनः उसके शरीर में संचालित होने लगे तो उसे एक दम बहुत जोर से रक्तवमन हुआ।

हमारे मन को लगा कि उसकी सिद्धि अभी अपूर्ण है। स्वामी जी, योगी के लिये तो संवाद प्रेषण एक सहज क्रिया है, संकल्पनिष्ठता जब एकाग्रता के साथ रेडियो स्टेशन की तरह प्रवाहित की जाती है तो सामने खड़े आदमी को तरह हर व्यक्ति से बातचीत की जा सकती है। यह एक अजीबो-गरीब चीज़ है। मैं अपने मित्रों से इसी पद्धति से मुलाकात करता हूं किन्तु उन्हींसे जो अपने अन्तर्मन के रेडियो की सूई घुमाना जानते हैं।

प्राण शान्त किये बिना योग साधना निरी बकवास है, सुरत शब्द योग ही सब कुछ नहीं है, योग तो विदेह स्थिति है, स्थूल जगत् से जब अन्तर्जगत् का दर्शन करते हैं तो यह स्थूल ब्रह्माण्ड घिनौना दीखने लगता है। अन्तरात्मा में अपार सौन्दर्य, अनंत संगीत और असीम आनन्द भरा पड़ा है। साधना से ही उसका आनन्द मिल सकता है। मेरा पक्का प्रण है कि मैं अपने जीवन की भेंट, योग के अर्पण करूंगा। मैं अभी साधनावस्था में हूं स्वामी जी, मुझे आशीर्वाद दो, मेरी समूची शक्ति इसी साधना में लय हो जाय। अब मैं पीछे नहीं हटूंगा। इसीलिए तो मैंने विवाह नहीं किया, घर की जुम्मेदारी नहीं उठाई।

मैं भी एक एड्वोकेट का लड़का हूं, मैंने भी आयुर्वेदाचार्य, ज्योतिषाचार्य किया है, इंग्लिश भाषा पर भी मेरा अच्छा अधिकार है; किन्तु मेरी मन की अन्तिम साध केवल योग की पूर्णता प्राप्त करना है।

मैंने फिर करवट बदली और योग से तंत्र में जा उतरे, मैंने पूछा कहिये योगी जी तंत्र का भी अध्ययन किया है क्या आपने ?

योगी ने कहा स्वामी जी आज ही सारा इम्तिहान लोगे क्या ?

मैंने तंत्रों का अध्ययन किया है 'नागार्जुन का अध्ययन कर रहा हूं' गोरखनाथ, चर्चरनाथ तथा सिद्धों के साहित्य को भी पारायण कर रहा हूं । मेरा मन भारत के इन महामनीषियों के अनुभवों को साकार करने का है ।

मैंने कहा कि नागार्जुन तथा नाथपंथियों एवं ८४ सिद्धों की रहस्यभरी वाणियों को तत्त्व गर्भित कर दिया गया है, या गूढ़ बना दिया है उसका उद्घाटन कैसे करोगे ?

योगी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसी से मुझे लगा कि अभी भावुकता और यौवन की मस्ती बेलगाम है, कल्पित पतवार और मानसिक बुलबुले ही चप्पू का काम दे रहे हैं, यथार्थ की भूमिका पर योगी अभी उतरा नहीं है ।

उसने कहा कि स्वामी जी, मैं यक्षिणी का साधन करूंगा या देवी सिद्धि, जिससे ये गूढ़ार्थ तथा बीजाक्षर सब प्रस्फुटित हो जायेंगे ।

योगी कहने लगा स्वामी जी अपनी जन्म कुन्डली तो दिखाइये ?

मैंने कहा, योगी जी, मेरा मकर लगन है ।

अच्छा शनि कहां हैं ?

दशवें स्थान में ।

कितने अंश का ?

सम्भव है २८ अंश का, तब तो आपको भी सूर्य और शनि योग का निष्णात और रहस्यात्मक विद्याओं का भण्डार बनायेंगे ।

योगी जी को काफी समय हो गया था, कहने लगे मैं आपकी कुण्डली और लगन का स्वयं निश्चय करके भविष्य के सम्बन्ध में अपने निश्चित मत प्रगट करूंगा ।

बहुत ही मृदु स्वर में योगी ने कहा, स्वामी जी, मुझे आज्ञा है कि मैं अब जाऊं ?

मैंने कहा कि जैसी आपकी इच्छा । अब भी उसकी शालीनता और मोहकता बरबश याद दिला रही है, अगर वह अपने चरित्र पर अडिग रहे तो ! भविष्य को उज्ज्वल बनाने में पीछे नहीं होगा । ऐसा मेरा विश्वास है ।

●

मुनि सुशील

आज के परिवेश में योग चमत्कार का घरोंदा बन गया है

योग को लेकर जगत के विचारकों एवं आध्यात्मिक चिंतकों में एक विशेष प्रकार की रसिकता पैदा हो गई है। आज भारत के पास निर्यात करने योग्य योग से बढ़कर कोई वस्तु न रह गई है। हर चीज़ के निर्यात में प्रतिद्वन्द्विता का भय हो सकता है, किन्तु योग के क्षेत्र में भारत अकेला है। और योग भी द्रोपदी के चीर की तरह अपने क्षेत्र का प्रसार कर रहा है। बहुत पुराने युग से योग का अनुसंधान भारत में हो रहा है, समाधि तथा सम्मिलन के अर्थों में योग बहुत घूम चुका, अब तो वह आसनों, सहज प्रक्रियाओं, चिकित्सा पद्धतियों और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व जमा रहा है ! जिधर देखिए उधर योगाश्रम, योग केन्द्र तथा यौगिक चिकित्सालयों की बाढ़ सी आ गई है। भारत के प्रमुख शहरों तथा राजधानियों में ही योग के चमत्कार दिखाए नहीं जाते अपितु संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों में योग के प्रति बहुत गहरी रुचि पैदा की जा रही है और भारत से गए योगियों की वहां धूम मची हुई है ! मेरे दिल्ली आने के बाद जितने मुझे विदेशी मिले उनमें से अधिकांश योग के विषय में जानकारी के लिए बहुत ही उत्सुक एवं बेचैन दिखाई दिये।

उन सभी विदेशी विद्वानों की योग के सम्बन्ध में कई प्रकार से जिज्ञासा प्रगट होती है :

१ योग के लिए कौन सा ग्रन्थ पढ़ें ?

२ योग के चमत्कार एवं आसन प्रक्रियाएं कहां देखें ?

३ कुण्डलिनी योग क्या है ?

४ सहज योग किसे कहते हैं ?

५ आत्म साक्षात्कार योग कैसे हो सकता है ?

६ कुम्भक का सही तरीका क्या है ?

७ प्रकाश एवं अपार संगीत कैसे सुना जा सकता है ?

८ षट् चक्र क्या है, और उसका बेधन का कौन सा प्रकार है ?

९ राज योग और हठ योग में क्या भेद है ?

१० मंत्र योग और लय योग किसे कहते हैं ?

योग के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्नों की तालिका इससे और भी लम्बी हो सकती है, किन्तु कहने का यह आशय है कि आज योग को लेकर भारत की अपेक्षा विदेशों में बहुत गहरी छानबीन की जा रही है ।

रामकृष्ण मिशन, योगोदा सत्संग सोसाइटी, स्वामी शिवानन्द का दिव्य जीवन योग, रामतीर्थ मिशन आदि कितनी ही संस्थाएं संसार के कितने राष्ट्रों में योग का प्रचार बड़े जोरों से कर रही हैं । इनमें से रामकृष्ण मिशन तथा योगोदा सत्संग सोसाइटी के तो योरुप में सैंकड़ों ही योगाश्रम बने हुए हैं, जहां हज़ारों विदेशी योग प्रक्रिया साधन में तल्लीन हैं । अकेले योगोदा सत्संग के दो सौ साधू संसार भर में योग का प्रचार कर रहे हैं और वे सब के सब विदेशी हैं । इन सब के केन्द्र में योग है, किन्तु योग साधन में जो सुधार उन लोगों ने किये हैं वही सुधार पूर्वक प्रतिष्ठित किया गया योग एक एक स्वतंत्र धर्म बन गया है । भारतवर्ष में और संसार में योग की सैंकड़ों सम्प्रदायें बन गई हैं । यह तो वेद एवं उपनिषदों को मध्य में रख कर योगों की बात मैं कर रहा हूँ । किन्तु जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई, सूफी, लाओत्से के ताओ धर्म तथा भारत वर्ष के सन्त मतों की गणना करने लगूं तो आप को आश्चर्य करना होगा कि इन सब धर्मों तथा सम्प्रदायों में योग पर ही सब से अधिक बल दिया गया है किन्तु योग पद्धति में सभी के कुछ न कुछ अन्तर अवश्य हैं योग के मानने वालों का मुख्य उद्देश्य चाहे किसी एक केन्द्र पर आकर अभिन्न क्यों न हो जाय किन्तु प्रणाली की भिन्नता के कारण एक योग सम्प्रदाय दूसरे योग सम्प्रदाय को परिपूर्ण मानने के लिए तैयार नहीं और न ही आदर देने के लिए रज़ामन्द हैं । हालांकि योग का अर्थ सात्त्विक आनन्द को अभिवृद्ध करना और राग द्वेष को समूलतः नष्ट करना है, फिर भी योग के प्रचारक एक दूसरी योग प्रक्रिया के विरुद्ध तथा योग प्रचारकों के विरुद्ध राजनैतिक दलबन्दियों की तरह पारस्परिक घृणा प्रसारित किया करते हैं ! इसका कारण है योग, आध्यात्मिक आनन्द से हट कर व्यापार बनता जा रहा है ! दुरुपयोग भी खूब हो रहा है, फिर योग का प्रसार बहुत तेज़ी से हो रहा है, निष्काम तथा सच्चे चिंतक और वास्तविक साधक योग के मैदान में उतर रहे हैं । महर्षि रमण तथा महर्षि अरविन्द का विश्व के बौद्धिक व्यक्तियों पर जो

प्रभाव पड़ा है उससे योग, महात्माओं एवं संतों से आगे बढ़ कर विद्वानों व दार्शनिकों का भी विचारणीय विषय बन गया है। आज तो जगत के सभी क्षेत्रों और सभी प्रकार के मानवों पर योग का साम्राज्य जम गया है। अहिंसा और योग आधुनिक जगत के न सही, किन्तु भावी संसार के सर्वाधिक विचारणीय विषय मान लिए गए हैं ? आने वाला समय बताएगा कि विश्व के घटना चक्र में योग एवं अहिंसा धुरा बन कर विश्व-संचालित करेंगे। क्योंकि अहिंसा मनुष्य को पाशविक भय से ही नहीं, अपितु मनुष्य को मनुष्य के भय से विमुक्ति दिला देगी और योग मनुष्य को प्रकृति पर विजय तथा आध्यात्मिक अन्तर शक्तियों को जागृत कर देगा। किन्तु इस समय जो अहिंसा व योग के प्रसार की होड़ लगाई जा रही है और योग को चमत्कार का घरौंदा तथा अहिंसा को सफेदपोस राजनीति बनाने का जो षड़यन्त्र किया जा रहा है उससे अहिंसा और योग का कोई भला होने वाला नहीं है। मैंने अपने जीवन में योगियों की बहुत खोज की है। उनमें से कुछ योगियों की उक्तियों को उद्धृत करना योग के इस लेख में अनुपयुक्त नहीं रहेगा, एक वायुभक्षी योगी कह रहे थे कि जगत रोटी, कपड़े की समस्या कभी सुलझा नहीं सकेगा किन्तु हमने इस भयंकर समस्या का समाधान निकाला है वायुभक्षण! १२ वर्ष की साधना से इतनी सिद्धि हमें प्राप्त हो गई है कि पेट में वायु भर कर वायु को पचाना और उसमें से ही अन्न व जल की आवश्यकता को पूरा कर लेना हम वर्षों से इसी प्रकार करते हैं। केवल शुद्ध वायुपान करते हैं, बस उसके बाद फिर रोटी व जलपान करने की इच्छा ही नहीं होती और न ही कोई निर्बलता अनुभव होती है। अगर जगत के लोग इस साधना को सीख लें तो उन्हें अपनी समूची ज़िदगी में अन्न व जल की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

दूसरे योगी मुझे कह रहे थे कि जैसलमेर व बीकानेर के इलाके में जहां जल उपलब्ध नहीं है वहां पर हज़ारों मृग अपने-अपने झुण्ड बना कर चौकड़ियें भरते हैं, बताइए वह उस पानी के बिना कैसे गुज़ारा करते हैं, जबकि वहां दो सौ हाथ से लेकर सात सौ हाथ तक कूओं का गहरा पानी है, वहां के लोगों को पानी मिलना मुश्किल है, तो उन हज़ारों मृगों को कैसे जल उपलब्ध है ?

मैंने जब इसका कारण पूछा तो कहने लगे कि इन मृगों को शीतली–प्राणायाम करना आता है ! शीतली–प्राणायाम के द्वारा संचित की गई वायु में से ही अन्न एवं जल आकर्षित कर लेते हैं और उससे क्षुधा तथा तृषा की तृप्ति हो जाती है ! प्राचीनकाल से योगीजन विकट जंगलों एवं गुफाओं में निवास करते थे, भिक्षा की पूर्ति वे केवल वायु भक्षण द्वारा ही करते थे ऐसे तो संसार के सभी प्राणियों में कोई न कोई यौगिक प्रक्रिया होती है। उसके सम्बन्ध में हमें विस्तार से अगले अंक में लिखने जा रहे हैं, पाठक प्रतीक्षा करें। ●

राजतन्त्र और धर्म

एक अराजकवादी की तरह मैंने राज्यतंत्र की अनिवार्यता को कभी स्वीकार नहीं किया, मानव मूल में न उन्नत है और न ही पिशाच है। जन्म से कोई भी व्यक्ति चोर या महात्मा बनकर नहीं निकलता है। परिस्थितियें और संस्कार उसका रूप संवारते हैं, साथी और समाज उसे राह देते हैं। जीवन, नदी व निर्झर की तरह बहता रहता है या कहीं किसी खड्डे में गिरकर सड़ता रहता है। धर्म ने जीवन-सरिता के दोनों ओर किनारे तो बनाये हैं, फिर भी जीवन नियंत्रित व संयमित करना आसान काम नहीं है। जबसे मनुष्य सृष्टि चल रही है तभी से शासन और अनुशासन का बोलबाला रहा है। मनुष्य-समाज को लेकर जो महत्त्वपूर्ण मत स्थिर किये गये हैं, विद्वानों के द्वारा हम उन्हें तीन रूपों में बांट सकते हैं, अराजकवादी, समाजवादी तथा आध्यात्मवादी विचारधारा। पं० नेहरू समाजवादी विचारधारा के पुरुष हैं, उनके मन में अरस्तू की तरह सामान्यतया मनुष्य मूलतः शैतान है या 'स्वभावेन दुष्टः', का विश्वास नहीं है, और न ही नेहरूजी को मनुष्य के प्रति इतनी उदात्त आस्था है कि 'जीव ब्रह्म नापरः' को ही एकान्त सत्य मानते हैं! नेहरू जी के विचारों के चारों ओर घूमने पर एक बात हाथ लगती है कि वे फूल की तरह मानव को खिलने तो देना चाहते हैं किन्तु गुलदस्ते में सजने के लिए पुष्प की वे इतिश्री मान लेते है। यहीं से उनका अराजकवाद मर जाता है और समाजवाद प्रारम्भ होता है। राज्यतंत्र के प्रति उन्हें गहरी निष्ठा है।

उन्होंने अपने जीवन में अन्तःकरण की उदात्त वृत्तियों के स्थान पर कानून की प्रतिष्ठा की है। न्याय व्यवस्था में जब तक कोई भी काम विरुद्ध नहीं पड़ जाता तब तक वे उसे अनुचित मानने को तैयार नहीं होते। यही कारण है कि पं० जी से जब-जब वार्तालाप होता है तो धर्म की चर्चा अवश्य छिड़ती है। धर्म से उनका अर्थ होता है विभिन्न जातियों एवं समाजों द्वारा अपनाई गई रूढ़ परम्पराओं व परम्परागत विचारों से। धर्म को उन्होंने व्यापक रूप में कभी नहीं लिया। वे सदा से धर्म को मजहब या मतवाद के गज़ों से नापते रहे हैं। इस बार भी धर्म के सम्बन्ध में दो-चार बात सुनने को मिलीं।

कहने लगे कि "धर्म सम्मेलन से अब तक क्या लाभ हुआ, मैं तो पहले भी मानता था और अब तक मानता था और अब भी मानता हूं कि धर्म के नाम से जितने भी सम्मेलन किये जाते हैं उनसे मनुष्य जाति का कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। अच्छा, मुनिजी आप बताइये कि धर्म सम्मेलन से क्या लाभ हुआ ? मैं लगातार १९५७ से यही देखता रहा हूं कि आखिर उससे लाभ क्या हुआ ?"

धर्म का प्रसंग चलने पर स्वाभाविक रूप से पं० जी कुछ उग्र हो जाते हैं। मैंने उनकी बात में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि "पं० जी, धर्म सम्मेलन से कुछ लाभ हुआ या नहीं, यह तो गौण कर दीजिये किन्तु आप इसे तो मानते होंगे कि जब-जब धर्म को लेकर विभिन्न मानव समुदाय में संघर्ष छिड़ते हैं तो उससे हानि तो खूब होती है ? पं० जी बोले "समूचा विश्व, धर्म के संघर्षों से लाल हो गया है, सबसे अधिक हमारा भारत धार्मिक विषमता से कलुषित हुआ है।"

मैंने हंसते हुए कहा—"पं० जी धर्म संघर्षों से हानि तो हो सकती है किन्तु धर्मों के मिलन एवं धर्म सम्मेलनों से लाभ नहीं हो सकता ? ये दोनों बातें आपस में विरोधी हैं। धर्म के नाम पर छिड़ने वाले युद्धों से आप विश्व विनाश की बात सोच सकते हैं किंतु धर्मों के मिलने से विश्व शान्ति का विश्वास नहीं उभर सकता है इसका क्या कारण है ? आपको धर्म शब्द से कुछ प्यार कम है, है भी सच्च, धर्म जैसे आत्म-संगीत को किसी शब्द या नाम से पुकारा नहीं जा सकता, धर्म जब अपने विशुद्ध रूप में आता है तो वह नाम और रूप दोनों बंधनों से विमुक्त करने की प्रेरणा देता है। पं० जी, धर्म को किसी मतवाद के घेरे में न डालिये, लोगों की भूल है जो यह कहते हैं कि वेदों ने धर्म पैदा किया, जैन शास्त्रों ने धर्म को जन्म दिया, महात्मा बुद्ध न होते तो धर्म ही न होता। जरथुस्त्र ने अगर जन्म न लिया होता तो धर्म, ईरान के लोगों को प्राप्त ही नहीं होता। हज़रत मूसा या ईसा, हज़रत मुहम्मद या जलालुद्दीन रूमी इस धरती पर अवतरित न होते तो यह जगत धर्म विहीन रह जाता। मान लीजिये, वेद शास्त्र, इंजील व कुरान, राम अथवा महावीर यदि जन्म न लेते तो धर्म का प्रादुर्भाव ही न होता। धर्म से इन सबका अस्तित्व है, ये धर्म के पिता नहीं हैं।" पं० जी कुछ चकराये अवश्य, सोचने लगे कि मेरा मतलब सच्चे धर्म से खिलाफत करना नहीं, सच्चा धर्म तो आवश्यक है, धर्म वास्तव में स्थायी एवं कभी न मिटने वाला तत्त्व है, जीवन की नेकी व फूल की सुगन्ध पैदा नहीं की जाती अपितु स्वाभाविक विकास से प्राप्त होती है।

"पं० जी हम इसे ही धर्म मानते हैं, धर्म सम्मेलन का अर्थ कुछ आडम्बर या परम्परा-प्रिय व्यक्तियों का घरोंदा नहीं है अपितु धर्म का विशुद्ध रूप से विकास हो, मानव की

स्वाभाविक अभिव्यक्ति को बल मिले, जीवन निर्माण में स्वत: अनुशासन की वृत्ति जगे, यहा हमारी इच्छा है। धर्म सम्मेलन यही काम कर रहा है, इसे देखा नहीं जा सकता। हां, अनुभव किया जा सकता है।"

पं० जी कहने लगे "कि धर्म की उपेक्षा आध्यात्मिक शब्द अधिक व्यापक है; आध्यात्मिक वातावरण के बिना संसार में शान्ति नहीं हो सकती। आज जो नैतिक पतन हो रहा है, उसका परिहार केवल कानून या धर्म संस्थायें ही नहीं कर सकतीं बल्कि आध्यात्मिकता से ही विश्व-शान्ति और व्यक्ति अभिवृद्धि हो सकती है।"

मैंने कहा "पं० जी, धर्म एवं अध्यात्म में हम लोग कोई अन्तर नहीं मानते हैं, बिना आध्यात्मिक के धर्म का सद्भाव हो ही नहीं सकता। धर्म ही अध्यात्म है, अध्यात्म ही धर्म है।"

पं० जी मुस्करा के बोले—"हां, इस नेक, पवित्र मकसद के लिए मेरी शुभ भावनायें आप के साथ हैं।"

समय काफी हो गया था, वर्षा रिमझिम रिमझिम बरस रही थी, मैंने कहा—"पं० जी, आप जाना चाहें तो जा सकते हैं हमारे लिये विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं।"

पं० जी विस्मय विस्फारित नेत्रों से हमारी ओर देखते रहे, मैंने उनके मनोगत प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि—"पं० जी हम जैन साधु हैं, वर्षा में जो जल बरसता है, उसमें हम जा नहीं सकते अन्यथा जल के जीवों की हत्या हम पर चढ़ जायेगी, पं० जी यह सुनकर अन्दर चले तो गये किन्तु थोड़ी सी देर बाद उनका पाकशास्त्री आया और कहने लगा "कि महाराज, सुराना जी तो हमारे पिता के समान हैं, मुझे खूब जानते हैं, मैं पं० जी का सबसे पुराना रसोइया हूं, पं० मोतीलाल नेहरू जी के जमाने से काम करता आया हूं, तो आज आप हमारे यहां का भोजन लीजिये।"

मैंने हंसते हुए कहा--"आज से तुम पं० जी के लिये और अपने लिये मांस पकाने और खिलाने का नियम कर दो तो मैं कुछ विचार कर सकता हूं, और मांस वाले बर्तन में पड़ी हुई कोई चीज हम नहीं लेते हैं।" रसोइया भी पक्का उपदेशक था। दस मिनट तक उपदेश की उसने झड़ी लगा दी, उसके कथन का सारांश यह था कि पं० जी धर्म के पक्के समर्थक हैं किन्तु पाखन्ड के बड़े विरोधी हैं तथा पं० जी को मांस खाना अच्छा नहीं लगता है, वे सब्जियों का रस ही पीना ठीक समझते हैं। अभी हम लोगों की चर्चा चल ही रही थी कि वर्षा बन्द हो गई और हम उनसे छुट्टी ले, सीधे चले आये। आहार पानी की न आवश्यकता थी और न ही पांच दस मिनट में कोई समझौता होने वाला था।

●

भारत महात्माओं का देश है। ऋषि, मुनि, यति, योगी, औघड, नाथ और जाने कैसे-कैसे रूप हैं संतों के इस देश में। भारत के चाहे जिस प्रदेश एवं क्षेत्र की ओर चले जाइये, बाबाओं के नाना रूप आपको देखने को मिल जायेंगे, भविष्य वाणियां और वाचा बोलते हुए सिद्ध पुरुषों के भी कहीं न कहीं दर्शन हो जाते हैं। हिमालय की तराई, गंगोत्री और उत्तरकाशी के पर्वतों की उपत्यकाओं में तप तपते हुए सन्यासियों से तो वार्तालाप बहुत ही दुर्लभता से प्राप्त होता है। हां, गांवों के निकट श्मशानों, खण्डहरों और जंगलों में भी पड़े पड़े पंचभूत में समरस होते हुये नंगे बाबाओं का कहीं न कहीं मिलन हो जाता है।

मैं तो बचपन का घुमक्कड़ ठहरा, फिर जैन साधु की साधना स्नान और क्रिया के संतुलन पर टिकी हुई है। यही कारण है कि जैन साधु में किसी प्रकार "अति" नहीं है। जैन साधु का जीवन संतुलन व्यवस्था एवं समता पर आधारित है। विषमता एवं अति पर उसका विश्वास नहीं है किन्तु जहां जहां विषमता और अति के दर्शन होते हैं वहां आनन्दभूति अवश्य प्राप्त होती है। अभी-अभी हमारा धर्म सम्मेलन के बाद भारत के विभिन्न एवं अपरिचित महात्माओं से परिचय बढ़ने लगा है।

कलकत्ता सम्मेलन का समय था, एक व्यक्ति मेरे से मिलने आया। पुराने फटे वस्त्रों से गरीब-सा दिखाई देता था। रंग से काला तो था ही, साथ में समूचे शरीर पर छपाकी तथा दाद के झुरमुट से दिखाई दे रहे थे। आंखें पिंगल, चेहरा सूखा हुआ, जबान रुकती-सी, अर्ध विक्षिप्त-सा तथा रुग्ण-सा दिखाई देता था। अश्रु स्नात-से नेत्र लगते थे, फिर भी उसने कितनी बार प्रयत्न किया बोलने का। अपनी बात स्पष्ट न कर सका, बड़ी कठिनाई के बाद वह बोला मुनि जी ! बाबा मच्छेन्द्रनाथ ने मुझे आपके पास भेजा है। मैंने झट से कहा बाबा जी कहां रहते हैं ?

डहा में रहते हैं, अकोला के पास है। बड़े प्रेम से उन्होंने कहा है कि मुनि जी सम्मेलन में जितना रुपया मांगें, उतना उनको दे आना, मुझे बताइए कितने रुपये दूं ?

भाई हम रुपया नहीं लेते हैं, स्पर्श करना भी अच्छा नहीं मानते हैं।

हां हां, आप तो नहीं लेते, विश्वधर्म वाले तो लेते होंगे, इतने में विश्वधर्म के

सम्पादक जो पास में ही बैठे थे, उन से न रहा गया वे बोले—जी हां, यह पत्र विश्वधर्म संगम की ओर से निकलता है, आप कुछ देना चाहें तो इसमें दे दीजिये।

क्या चन्दा है ?

पाँच रुपये !

केवल पांच रुपये, इस से अधिक भी होगा ?

हां सौ रुपये,

इससे अधिक ?

२५० रुपये,

इससे अधिक ?

५०० रुपये,

इससे अधिक ?

सम्पादक आश्चर्य में पड़ गया, क्या यह जीर्ण-शीर्ण वस्त्रधारी इतने रुपये, क्या इतने पैसे भी दे सकता है। अवाक् उसके मुख की ओर देखता रहा, उसने फिर लड़खड़ाती जबान में वही पूछा क्या इससे भी अधिक चन्दा दिया जा सकता है ? सम्पादक को विश्वास नहीं हुआ। सम्पादक बोला—जी नहीं !

७२७ रुपये थे वे सारे। उस बंडल में से ५०१ रुपया सम्पादक ने ले लिया शेष रुपये लौटा दिये। उस अज्ञात व्यक्ति ने उन नोटों को तरोड़ मरोड़ कर कपनी जेब में इस उपेक्षाभाव से डाल लिया जैसे वह रुपयों का महत्त्व ही नहीं जानता।

एक कागज का टुकड़ा, जिस पर बाबा मच्छेन्द्रनाथ का सन्देश अंकित था देकर बिना कुछ अधिक बताये चला गया। धर्म सम्मेलन हुआ, सैकड़ों प्रतिनिधि उसमें आये, चले गये, एक वर्ष बीत गया, फिर भी उस व्यक्ति की स्मृति बनी रही। न मालूम उसमें क्या असर था। व्यक्तित्व या प्रभाव जैसी उसके पास कोई चीज नहीं थी, वाणी लचक खाती थी, अटपटाकर बहुत प्रयत्न के साथ वह बोल सकता था, किन्तु उसके शब्दों में इतनी दृढ़ता थी—वह भुलाये जाने पर भी अविस्मृत है। ठीक एक वर्ष के बाद उन्हीं मच्छेन्द्रनाथ बाबा ने तृतीय विश्वधर्म सम्मेलन, डहा में करने का निमन्त्रण दिया।

श्री उमरकर और तुकड़ो जी महाराज, बाबा के निमन्त्रण को लेकर मेरे पास आये और कहने लगे, ये बाबा बड़े सिद्ध पुरुष हैं, महाराष्ट्र में लाखों लोग उन्हें भगवान की तरह पूजते हैं, रुपये का उनके सामने कोई प्रश्न नहीं है, अवधूतों की तरह रहते हैं, जो मुख से निकलता है, वह पूरा हो जाता है, लोग उनसे बहुत डरते भी हैं, मालूम नहीं

कब क्या कह दें, किन्तु सुशील मुनि जी, तुम्हारे साथ न जाने कैसी मुहब्बत हो गई है। हर समय याद करते हैं और कहते हैं कि मुनि को बुला कर लाओ, सम्मेलन हम करेंगे किन्तु एक बार वह बाबा से मिलें तो जरूर, उससे दुनिया का भला होने वाला है, प्रभु की दिव्य प्रेरणा उसमें उद्‌बुद्ध हो गई है, उसे यहां लाओ. इसलिए उनके सम्मेलन का निमंत्रण आप अवश्य स्वीकार कर लें।

मैंने कहा,जब आप समर्थन कर रहे हैं तो कमेटी को बाबा का निमंत्रण मानने में जरा भी इनकार नहीं होगा। हां, एक बात है कि मैं नहीं जा सकूंगा। सम्मेलन करना तो स्वीकार कर लिया गया, किन्तु बड़े बाबाजी का वही कहना बराबर रहा कि मुनि ही हमारा धर्म सम्मेलन है, वह नहीं आयेगा तो सम्मेलन करना बेकार है।

यही सन्देश लेकर वायुयान से राजा बाबा (कलकत्ते वाले महानुभाव) दिल्ली आ पहुंचे। इस बार वह हमारे निकट ही ठहरे, उनकी चर्या देखने का अवसर मिला, उनके विचार, सिद्धान्त तथा साधना का भी परिचय प्राप्त हुआ।

हर समय वह खोये-खोये से रहते हैं। कोई शब्द जप, मंत्र या श्लोक रटते ही नहीं, कुछ कुछ क्षणों के बाद एक बेहोशी-सी आती रहती है, फिर धोंकणी सी लग जाती है, आंखों से आंसू बहने लग जाते हैं, बाबा बाबा की रट लगाते रहते हैं। देह जैसे उनकी शिथिल हो गई है। हर समय देह और आत्मा की पृथकता का अनुभव होता रहता है।

योग की किसी क्रिया का वह अवलम्बन नहीं लेते। चाय और सिगरेट का कश लग जाय तो ठीक, अन्यथा एकान्त स्थान में पड़े रहते हैं। आज से ११ वर्ष पहले वह भी गृहस्थ थे, बच्चे और पत्नी अब भी मौजूद है, किन्तु उनके मन में सिवाय बाबा के, और किसी का भी आकर्षण नहीं।

बस, बाबा का एक सन्देश उनके पास है, जब धुन में आते हैं तो कितनी ही भाषाओं में बोलना शुरू कर देते हैं—हिन्दी, मराठी, इंगलिश—संभव है दूसरी भाषा भी बोलते हैं। देह से विदेह की ओर जाने की यह साधना मेरे लिए बड़ी विचित्र सी लगी। यह रहस्यवादी सिद्धों जैसी गुह्यतम साधना है या अपने आपको खो देने की प्रक्रिया है। आप कुछ कहें, जब वह अपनी सुधि में आते हैं तो निष्णात अध्यात्म द्रष्टा की उदात्त वाणी उनके मुख से निकलती है।

●